माना जाने लगा। 'नाक मित्सू' नामक एक व्यक्ति जापानी इतिहास ग्रैार साहित्य इत्यादि का सर्व-जन-प्रिय नायक था। एक समय वहां के सम्राट के पुत्र को एक अपराध में प्राणदण्ड की आज्ञा हुई थी, उस समय 'नाकामित्सू' ने सम्राट के पुत्र की मुक्ति के लिये अपने पुत्र का सिर अपने हाथ से काट कर राजभक्ति का पूरा परिचय दिया था। उस विवरण को पढ़ कर राजस्थान की प्रसिद्ध धात्री "पन्ना" की कथा हमलोगों को स्मरण हो आती है। उस समय में जापानी लोग प्रतिहिंसा करने को भी बड़ा पवित्र कर्म्म समझते थे। जैसे आजकल के योरपीय साहित्य-लेखक-गण उपन्यास में प्रेम का दिखाना ही अपना मुख्य कर्तव्य समझते हैं, वैसेही उस समय के जापानी उपन्यास तथा काव्य के प्रेमीगण भी अपने साहित्य ग्रन्थों में प्रतिहिंसा का उत्कर्ष दिखलाना ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते थे। चीन के संश्रव से जापानी लोग जब धीरे धीरे चीनवालों का अनुकरण करने लगे, तभी से स्त्रियों के प्रभाव भी धीरे धीरे लुप्त होने लगे ग्रैार साथ ही साथ धर्म की भी विशेष अवनति होने लगी। विधवाग्रों में दूसरे पति के ग्रहण करने की जो अनिच्छा प्रकाश करती थीं, वे ही सतीत्व की ध्वजा समझी जातीं थीं ग्रैार वेश्या-वृत्ति उस समय निन्दनीय नहीं समझी जाती थी। बड़े खेद का विषय है, कि उस समय में जिन बालिकाग्रों के माता पिता दरिद्र होते थे, यदि वे बालिकाएं अपने माता पिता के पालन पोषण के लिये बारविलासिनी होतीं ते वे बड़ी प्रशंसा की पात्री समझी जाती थीं। इसी कारण से जापानी उपन्यासों की नायिकाग्रों में प्रायः वेश्याही बड़े गैारव की दृष्टि से देखी जाती थीं।

सन् १८६७ ई० में जापान राज्य में एक बड़ा भारी देशव्यापी उपद्रव हुआ था। उस समय वहां के 'सगुण' नामक सम्राट को निकाल बाहर करके उसके स्थानमें 'सिकाडो' नामक व्यक्ति राजसिंहासन पर बैठाया गया। उसी समय से वहां के राज्य-सम्बन्धी तथा ग्रैार ग्रैार विषयों में धीरे धीरे बड़ा परिवर्त्तन होने लगा। अंग्रेज़ी भाषा ग्रैार योरपीय सभ्यता का प्रवेश भी उसी समय से जापान में हुआ। रेल बनने लगी, टेलीग्राफ़ बनाए गए, नई प्रणाली के अनुसार सेना को शिक्षा दी जाने लगी, ग्रैार युद्ध के जहाज़ बनने लगे।

निदान धीरे धीरे सभी काम योरप वालों की भांति होने लगे। क़ानून, शिक्षा प्रणाली, राज्य-प्रबन्ध आदि योरपीय ढङ्ग पर होने लगे ग्रैार गली गली स्कूल भी बनने लगे।

सन् १८७२ ई० में पहिले पहिल जापान में सम्वादपत्र निकला ग्रैार धीरे धीरे इनका प्रचार इतना बढ़ा कि सन् १८९४ ई० में सम्वादपत्रों ग्रैार सामयिक पत्रों की संख्या ८१४ तक पहुंची। इसके अनन्तर साहित्य के ग्रैार ग्रैार अङ्गों की पुष्टि करने के लिये धीरे धीरे अंग्रेज़ी ग्रन्थों का अनुवाद होने लगा, तथा दार्शनिक ग्रैार वैज्ञानिक ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। उपन्यास भी सबसे पहिले अनुवादित हुए ग्रैार इन पुस्तकों ने सर्वसाधारण में बड़ा आदर पाया। नीति विषयक ग्रन्थों में 'टेलीमेकस' ग्रैार रैाबिन्सन क्रूसो' इत्यादि भी अनुवादित हुए।

आज कल के उन्नतिशील जापानी विद्वज्जन योरप ग्रैार जापान के (पुराने) ग्रन्थों के भावों को मिश्रित करके अपने साहित्यभण्डार की पूर्त्ति कर रहे हैं। 'सू डोनान सुई' नामक व्यक्ति अपने एक राजनैतिक उपन्यास में योरप के लिटन, बेकन, स्काट, ह्यूगो, इत्यादि का नाम लिख कर कहता है कि मैंने राजनैतिक उपन्यास लिखने के ढङ्ग इन लोगों की प्रणाली से लिए।

सन् १८८७ ई० में सू डोनान सुई ने सर्वोत्तम उपन्यास लिख कर प्रकाशित किया। इस पुस्तक में 'टोकियो' नगर के आधुनिक आदर्श शिष्ट की जैसी उन्नत्ति हुई है, उसका बड़ा ही मनोहर चित्र खींचा

है। इस उपन्यास की नायिका एक परम सुन्दरी दूध बेंचने वाली है। यह बात लोगों के ध्यान में बहुत कम आवेगी कि दूध बेचने वालियों में भी क्या किसी उपन्यास की प्रधान नायिका बनाने योग्य पात्री होती हैं? परन्तु 'सू डोनान सुई' ने उस दूध वाली के आश्चर्यमय गुणों का बखान किया है और देखिए जापान में दूध खाद्य पदार्थों में नहीं ग्रहण किया जाता। मनुष्यदेह के पुष्टि-साधन में संसार में दूध के समान दूसरा कोई खाद्य पदार्थ नहीं है, पर जापान वाले दूध को छूते तक न थे। ऐसी अवस्था में एक सुशिक्षिता दूध वाली का अपने देशवालों को दूध के गुणों को समझा कर उसका प्रचार करना क्या थोड़े गौरव की बात है? क्या यह उसके आश्चर्यमय गुण का प्रताप नहीं है कि जिसके द्वारा उस सुन्दरी ने अपने देश से दूध पर घृणा करने वाले कुसंस्कार को दूर कर के देश में उसके प्रचार का द्वार दृढ़ता से सदैव के लिये खोल दिया!

फ़ोटोग्राफ़ी

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

(६)

चित्र छापना

नेगेटिब से जो चित्र उतारा जाता है, उसे अंग्रेज़ी में प्रिण्टिङ्ग कहते हैं, और छपे हुए काग़ज़ को प्रिण्ट कहते हैं। चित्र छापने का काम साधारणतः दो प्रकार के काग़ज़ पर किया जाता है। एक प्रकार का प्लेन पेपर (Plain paper) अर्थात् साधारण काग़ज़ है, जिसे फ़ोटोग्राफ़ रङ्गीन करने के काम में लाते हैं। दूसरे एलब्युमेनाइज़्ड् पेपर (Albumenized)* को प्रायः सभी लोग काम में लाते हैं। इसका ऊपर का भाग चिकना और उज्वल होता है। इस काग़ज़ पर चित्र छापने से वह स्वच्छ और सुन्दर दिखाई देता है।

* किन्तु आज कल प्रायः सभी लोग इसके स्थान में पी० ओ० पी० काग़ज़ का ही व्यवहार करते हैं।

फ़ोटो छापने के लिये आवश्यक द्रव्य

पोर्सिलेन डिश	... ...	३
भैंस के सींग का अथवा चांदी का छोटासा चिमटा	... ...	१
सिलवर नाइट्रेट	Silver nitrate	
साफ़ जल	Distilled water	
एलब्युमेनाइज़्ड् पेपर	Albumenized paper	
अमेरिकन पेग	American peg	
लिटमस पेपर	Litmus paper	
क्योलीन	Keolin	
प्रिण्टिङ्ग फ़्रेम	Printing frame	
क्लोराइड आफ़ गोल्ड	Gold chloride	
एसिटेट सोडा	Soda acitate	
हाइपो सलफाइट सोडा	Hyposulphite soda	

प्रिण्टिङ्ग बाथ (Printing bath)—चित्र छापने के पहिले "प्रिण्टिङ्ग बाथ" तैय्यार करना चाहिए। कोई कोई इस प्रिण्टिङ्ग बाथ को सिलवर प्रिण्टिङ्ग बाथ भी कहते है। यह केवल नाइट्रेट आफ़ सिलवर (यवक्षारित सिलवर) और डिस्टिल्ड् वाटर वा शुद्ध जल को एक साथ मिला देने से ही प्रस्तुत हो जाती है। इस अरक का विचित्र गुण है, कि यह जहां काग़ज़ और कपड़े पर लगने के अनन्तर आलोकित स्थान में रक्खा गया कि वह स्थान सम्पूर्ण काला होजाता है। इससे इस अरक को अन्धेरी कोठरी में ही पूर्वोक्त एलब्युमेनाइज़्ड पेपर में लगा कर उसे सुखा लेना चाहिए। और तब प्रिण्टिङ्ग फ़्रेम में नेगेटिब के फिल्म के ऊपर उपर्युक्त काग़ज़ को रखके फ़्रेम के पीछे का भाग बन्द कर दो। और अब इसके चान्दने में जाने से आपही उसके छायांश अर्थात् स्वच्छ अंश के द्वारा जो आलोक काग़ज़ पर पड़ेगा उससे स्वच्छ अंश तो काला हो जायगा और जहां पर काला है और उसके भीतर आलोक नहीं पहुंच सकता, वहां का सम्पूर्ण स्थान सफ़ेद

रहेगा। अर्थात् तुम्हारे नेगेटिव में जहां पर काला अंश होगा वहीं छपने में सफ़ेद आवेगा और जहां स्वच्छ अंश होगा वहीं काला रङ्ग छपेगा। इसी बार तुम्हारी आदर्शमुर्ति के समान आलोकित स्थान परअ लोक और छाया के ठिकाने छाया रहेगी।

प्रिण्टिंग बाथ

नाइट्रेट आफ सिलवर (कास्टिक—यह चांदी द्वारा प्रस्तुत की जाती है) ... ४५ ग्रेन
डिस्टिल्ड् वाटर (स्वच्छ जल) ... १ आउन्स

डिश में आध इञ्ची जल भरो और उसमें दानेदार सिलवर मिलाओ। इस रीति से अर्क तैयार होजाने पर पूर्वोक्त लिटमस पेपर द्वारा परीक्षा करनी चाहिए। लिटमस काग़ज़ का एक टुकड़ा लेकर उसमें डुबोकर देखना चाहिए कि उस काग़ज़ का क्या रंग हो जाता है। यदि वह लाल रंग का होजाय तब तो इस तैयार किए हुए अरक में २-३ बूंद लाइकर एमोनिया डालो और जो नीला रंग होजाय तब उसमें किसी दूसरे पदार्थ के छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इस अरक को अधिक व्यवहार करने से वह गदला होजाता है, किन्तु सफ़ेद क्योलिन नामक पदार्थ के मिला देने से पुनः स्वच्छ हो जाता है। २० आउन्स अरक में २ आउन्स क्योलिन छोड़कर बोतल में भरकर धूप में रक्खो और पुनः फिल्टर पेपर वा ब्लाटिङ्ग पेपर से छान लो। इस बाथ को बहुत दिनों तक व्यवहार करने से वह निस्तेज भी होजाती है, इसलिये समय समय पर सिलवर देते रहना चाहिए, कि जिसमें वह काम में लाने योग्य बनी रहे। और यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इसके संग और कोई धातु न मिल जाय, क्योंकि इसमें और किसी धातु के संयोग होने से पुनः यह किसी काम की नहीं रहती।

प्रत्येक आउन्स में कितना सिलवर है इसके जानने कि लिये अर्जेण्टोमीटर से परीक्षा करते रहना चाहिए। सिलवर के कम होजाने से चित्र उत्तम नहीं छपता। इसलिये इस अर्क को काम में लाने के पीछे अवश्य अर्जेण्टोमीटर द्वारा जांच कर के आवश्यक पूर्त्ति कर देनी उचित है, क्योंकि बिना जांचे इस कार्य्य के करने से अवश्य क्षति उठानी पड़ती है। अर्जेण्टोमीटर ठीक गौ के दूध की परीक्षा करनेवाले एक्टोमीटर के सदृश होता है। एक प्रकार के इसमें चिन्ह खुदे हुए होते हैं। इस यंत्र को सिलवर प्रिंटिङ्ग बाथ में डुबाकर परीक्षा करने से ठीक मालूम होजाता है कि अब इसमें कितना भाग सिलवर का विद्यमान है। इस यंत्र का रखना प्रत्येक फोटोग्राफर को आवश्यक है, क्योंकि नियमित सिलवर के न रहने से कदापि चित्र सुन्दर और स्वच्छ नहीं छपेगा।

गोल्ड टोनिंग बाथ

क्लोराइड आफ गोल्ड—यह एक मूल्यवान पदार्थ है, क्योंकि यह विशुद्ध स्वर्ण द्वारा बनता है। साधारणतः यह १५ ग्रेन की एक छोटी सी शीशी में मिलता है। इस शीशा को तोड़कर दो आउन्स की शीशी में इसे डाल दो और दो आउन्स साफ जल मिला कर एक लेबिल पर गोल्ड टोनिङ्ग बाथ लिख कर चिपका दो, जिसमें इसके ढूंढ़ने में समय व्यर्थ न खोना पड़े।

हाइपोसलफ़ाइट आफ सोडा वा फिक्सिंग बाथ

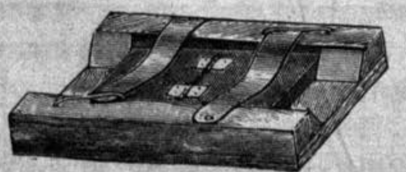
हाइपो ... ... २ आउन्स
साफ जल ... ... १६ आउन्स

यह आवश्यकता पड़ने पर ताज़ा ही तैयार करना चाहिए।

सेन्सिटाइज़ करना वा काग़ज़ पर
सिलवर चढ़ाना

अँधेरी कोठरी के अन्दर टेबिल के ऊपर एक साफ डिश रखकर उसे आध इञ्च सिलवर प्रिंटिङ्ग बाथ से भरो और अपने नेगेटिव के साइज़ के

अनुसार एलव्युमेनाइज़्ड् पेपर के काट ले और इस कागज़ के एलव्युमेनाइज़्ड् लगे हुए भाग का मुख नीचे करके देनें ओर के दे विपरीत कोने के इस रीति से पकड़ो कि जिसमें बीच का मध्यभाग नीचे के झुकजाय और जब सिलवर उसमें लगने लगजाय उस समय बड़ी सावधानी के साथ देनों कोनों के छोड़ दे। इस समय धीरे धीरे डिश के हिलाओ, किन्तु ध्यान रहे कि कागज़ की पीठ पर सिलवर न लगजाय। इस प्रकार आध मिनिट करने के पीछे चांदी के चिमटे से उस डूबे हुए कागज़ के डिश के एक कोने में खींच कर ले जाओ और पुनः धीरे से बाहर खींच लो। पूर्वोक्त प्रकार से पुनः सिलवर में उसे डुबा कर डिश के २॥ मिनिट तक हिलाते रहे। इसके पीछे उत्तम कागज़ का एक कोना पकड़ कर उसे निकाल कर नीचे एक टुकड़ा ब्लाटिङ्ग पेपर का देकर अमेरिकन पेग इत्यादि से टाँग दे। यही कागज़ सूख जाने पर प्रिण्ट करने के लिये उपयुक्त सेन्सिटाइज़्ड् पेपर हे जाता है। सदा काम में लाने योग्य कागज़ ताज़ा बना लेना चाहिए क्योंकि यह तैयार किया हुआ कागज़ अधिक दिन स्थायी नहीं रहता। प्रत्येक शिक्षार्थी के ध्यान रखना उचित है कि यह कार्य्य अँधेरे मकान में छोड़ कभी आलोकमय स्थान में नहीं हे सकता। सेन्सीटाइज़ पेपर बना बनाया बाज़ार में भी मिलता है और इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के कागज़ मिलते हैं।



प्रिंटिङ्ग फ़्रेम

कागज़ के अच्छी रीति से सूख जाने पर उसके प्रिण्टिङ्ग फ़्रेम में अपने प्रस्तुत किए हुए नेगेटिव फ़िल्म् की ओर, अथवा जिधर वार्निश की है उसी के ऊपर जिधर सिलवर लगाई है, प्लेट पर उलट के रक्खो और उसके पीछे एक उसी नाप का ब्लाटिङ्ग पेपर का टुकड़ा प्रिण्टिङ्ग फ़्रेम के पीछे के भाग में रख कर फ़्रेम के सङ्ग लगे हुए स्प्रिङ्ग से उसे बन्द करे।

अब प्रिण्टिङ्ग फ़्रेम के धूप में रखना होगा, क्योंकि जब तक वह सम्पूर्ण न छपेगी तब तक उसे धूप ही में रखना होगा। सब प्रकार के नेगेटिव एक नियत समय में नहीं छप सकते। जो नेगेटिव अधिक डिम (काला) होगा उसके छपने में अधिक समय की आवश्यकता है, ओर जो नेगेटिव थिन (अपेक्षाकृत स्वच्छ) होगा वह काले नेगेटिव की अपेक्षा थोड़े ही समय में छपेगा। इससे जो नेगेटिव थिन हो उसे सम्पूर्ण धूप में न रखना चाहिए वरन् छाया में ही छापना उत्तम है। कितना छप चुका और कितना बाकी है, इसके जानने के लिये प्रिण्टिङ्ग फ़्रेम के केवल एक ओर के स्प्रिङ्ग के बड़ी सावधानी के साथ खोल कर डार्क रूम में ले जाकर देखते रहना चाहिए; किन्तु यह काम सावधानी के साथ हो, क्योंकि यदि वह कागज़ जरा भी हट बढ़ गया ते सब परिश्रम ही वृथा जायगा और उसका अधिक चान्दने के स्थान में रहना भी विशेष हानिकारक होगा।

साधारणतः छापने में १० मिनिट से लेकर आध घण्टा तक लगता है। पहिले उक्त कागज़ में सामान्य सामान्य रेखा पड़ती हैं, तथा पीछे क्रमशः सम्पूर्ण चित्र मुद्रित हो जाता है। छपने की परीक्षा करने के समय हट बढ़ जाने से वा उसके देर तक आलोकित स्थान में रहने से कागज़ सम्पूर्ण काला हो जाता है। मुद्रित होने का कार्य्य समाप्त होने पर, अर्थात् जब चित्र साधारण से अधिक काला हो जाय, तब प्रिण्टिङ्ग फ़्रेम में से चित्र निकाल कर, टोन, फ़िक्सिंग् प्रभृति नियमित रूप से अन्यान्य काम करने होंगे। छपा हुआ कागज़ किस क्रिया से रह सकता है, सब कामों के करने के पीछे किस प्रकार वह ठीक हो सकता है, यह सब कुछ दिन अभ्यास करने से स्वयं मालूम हो जायगा।

टोन किस प्रकार होता है?

छपे हुए कागज़ को चारों कोनों से ठीक कर के काटो। इस कागज़ को एक मोटे शीशे के टुकड़े पर रख के काटते हैं, उसे कटिङ्ग टेबिल कहते हैं और साइज़ के अनुसार जिस कांच के टुकड़े को रख के कागज़ काटते हैं उसे कटिङ्ग शेप कहते हैं, तथा जिस तीक्ष्ण छूरी से वह काटा जाता है उसे प्रिण्ट-ट्रिमर कहते हैं। यह काटने का कार्य्य एलब्यु-मनाइज़ड पेपर पर प्रिण्ट होने के पीछे और टोन होने के प्रथम किया जाता है और पी० ओ० पी० पेपर पर प्रिण्ट और टोन होने के पीछे होता है।

जितने चित्र छापे जांय उतने का टोन इत्यादि कार्य्य उसी दिन समाप्त कर देना चाहिए। प्रथम एक साफ़ डिश में जल भर कर जितने चित्र का टोन करना हो, उन्हें इस डिश में भिगो दो और ५ मिनिट तक उनको हिला कर और नीचे ऊपर करके उस पानी को फेक दो। पहिले उक्त डिश में से तसवीरों को निकाल लो और पुनः उस डिश में जल भरकर इसके प्रत्येक आउन्स में १ ड्राम क्लोरिड आफ सोडियम (विशुद्ध लवण) मिलाओ और जब यह (लवण) इस जल में अच्छी तरह घुल जाय तो छपे हुए चित्रों को इसके जल से धोने से यदि वे लाल हो जांय तो और थोड़ी देर तक इसी जल से उन्हें धो लेना चाहिए। कभी कभी पी० ओ० पी० कागज़ के लिये फिटकिरी और नोन दोनों एक साथ ही व्यवहार करते हैं।

इस क्रिया के करने के पीछे एक दूसरी डिश में गोल्ड टोनिङ्ग बाथ देकर धोना चाहिए, क्योंकि इससे चित्र अपेक्षाकृत सुन्दर और चिरस्थायी होता है।

गोल्ड टोनिङ्ग बाथ	... १ ड्राम।
सोडा एसिटेट	... ३० ग्रेन।
शुद्ध जल ...	४ से लेकर ८ औन्स तक।

(इस परिमाण से एक सम्पूर्ण कागज़ टोन हो सकता है)

उपर्युक्त द्रव्यादि को एक में मिलाकर एक एक करके चित्र को धोना वा रञ्जित करना चाहिए। टोन करने में जब चित्र गहरा काला वा बैंगनी (Purple) रङ्ग का होजाय तो एक दूसरी रिकाबी में स्वच्छ जल भर के उसे इस रिकाबी में भिगो देना उचित है। उसी क्रम से एक एक तसवीर टोन करने से उत्तम होता है। इसमें थोड़े काल तक अभ्यास करने से इसके सम्पूर्ण नियमों में ज्ञातव्यता हो जाती है। बहुत देर तक टोनिङ्ग बाथ के व्यवहार करने से वह खराब हो जाती है, किन्तु इस प्रकार की जब अवस्था हो रही हो, उस समय थोड़ी सी खड़िया को मिला लेने से वह बहुत सुन्दर टोन हो जाता है।

चित्र का कागज़ पर छापना और उसका टोन होना सब तुम्हारे नेगेटिव के आधीन है। छपा हुआ चित्र अधिक समय तक टोनिङ्ग बाथ में रह जाने से वह धूसर वर्ण का होकर भ्रष्ट होजाता है। साधारण दो से छः मिनिट में एक चित्र टोन होता है। यह भी ध्यान रहे, कि यह (टोन) अधिक आलोकित स्थान में वा रुबीलाइट में नहीं हो सकता। द्वार के पास साधारण उजेले में टोन करना उत्तम है, क्योंकि रुबी लाइट में चित्र अच्छा दिखाई नहीं देता, और अधिक आलोकित स्थान में भी चित्र क्रमशः काला होजाता है। और सबसे उत्तम तो यह है कि किवाड़ा बन्द करके लम्प की रोशनी में काम करने से सुगमता भी है और चित्र भी उत्तम होता है। जब सब चित्र टोन होजांय तब दो तीन बार साफ़ पानी से अच्छी तरह उन्हें धो कर एक और दूसरी रिकाबी में फिक्सिङ्ग बाथ भरो और उसमें इन्हें डुबा कर क्रमशः उलट पुलट करते रहो। इसी प्रकार १०-१५ मिनिट करने के पीछे हाइपो फेंक दो, क्योंकि उसका प्रति बार नया बना लेना ही ठीक है। गरम जल* में हाइपो भिगोने से उत्तम होता है। उसके

* किन्तु पी० ओ० पी० पेपर के टोन में इसके परिवर्त्तन में शीतल जल का व्यवहार करना चाहिए। यदि सम्भव हो तो बरफ़ के जल में टोन करना ही बहुत अच्छा है।

प्रति आउन्स में २-३ बूंद लाइकर एमोनिया के दे देने से चित्र में जो कभी कभी पानी के बबूलों के समान होजाता है वह नहीं होगा। फिक्सिङ्ग होने के पीछे हाइपो फेंक कर पहिले चित्र को साफ़ पानी में धो लेना उचित है। एक बड़ी रिकाबी में जल भर कर चित्रों को भिगो दो और दो घण्टे तक आध घण्टे के अनन्तर बार बेर पानी बदल दो। इस क्रिया के समाप्त होने के पोछे पुनः २४ घण्टे तक चित्र को भिगो देना बहुत आवश्यक है। इसके अनन्तर २-३.बार साफ़ जल में धोकर सुखा लो। जब तक चित्र १२-१४ घण्टे जल में न भिगाया जायगा तब तक वह अच्छा नहीं होगा, वरन् थोड़े ही दिनों में फेड अथवा एक दम फीका पड़ जायगा। जब यही उत्तम रीति से धोया जाता है तब बहुत दिनों



प्रिण्ट धोने का पात्र

तक फ़ेड नहीं होता। यहां पर प्रिण्ट धोने के एक यंत्र का चित्र है, जिसके रखने से प्रिण्ट बहुत अच्छी तरह से धोया जा सकता है।

जब चित्र सूख जाय तब उसे जल से भरी हुई डिश में भिगोकर एक शीशे के बड़े टुकड़े पर उलटकर रक्खो, तब अरारोट से वा मौंउटिङ्ग स्टार्च (Mounting starch) से उक्त चित्र को कार्ड पर चिपका दो। इसे अंग्रेज़ी में माउन्ट करना कहते हैं। माउन्ट होजाने के पीछे जब कि वह सूख जाय, तब रुलर बर्निशर (Ruler burnisher) की सहायता से वार्निश कर लेना उचित है, क्योंकि इससे चित्र में अच्छी पालिश वा चमक आजाती है, और चित्र बहुत सुन्दर दिखाई देने लगता है।

स्पिरिट लम्प जलाकर रुलर बरनिशर के रुलर को गरम करके पीछे कार्ड पर लगे हुए चित्र पर नीचे लिखी हुई औषधि को एक नरम कपड़े में लेकर लगा दो और थोड़ी देर के पीछे पुनः कपड़े से पोंछकर उस चित्र को रुलर बरनिशर के भीतर देकर दहिने हाथ से उसका हाथल घुमाने से तुम्हारी क्रिया समाप्त हो जायगी, किन्तु इसका विशेष ध्यान रहे कि रुलर घुमाते समय किसी स्थान से चित्र फट न जाय।

रेक्टीफ़ाइड स्पिरिट	...	...	१ आउन्स
क्याष्टाइल सोप	...	...	६ ग्रेन*

इन दोनों औषधियों को मिला कर कांच की एक छोटी शीशी में बन्द कर रक्खो। इसीका नाम वारनिशिङ्ग सोलूशन है। यह बना बनाया भी मिलता है। उपर्युक्त क्रिया से वार्निश प्रस्तुत करके वार्निश कर देने से इस कार्य्य की समाप्ति हो जाती है। प्रथम शिक्षार्थियों को उचित है कि अपने हाथ से प्रिण्टिङ्ग, टोनिङ्ग, आदि क्रिया न करके, किसी दूसरे अच्छे फोटोग्राफर से करालेना अच्छा है, क्योंकि इससे उनको सुविधा होगा।

वेलक्स काग़ज

यह काग़ज भी चित्र छापने के काम में आता है। लम्प के उजेले में कुछ दूरी पर यह खोला जा सकता है और लम्प ही की रोशनी में डेवेलप वा परिस्फोटन कार्य्य भी किया जा सकता है। लम्प के और सूर्य्यालोक से प्रिण्ट वा मुद्रित भी हो जाता है। साधारण नेगेटिव से जैसे एलब्युमेनाइज़्ड काग़ज़ पर चित्र छपता है वैसे ही इस काग़ज़ पर भी छपता है। अंधेरी कोठरी में प्रिण्टिङ्ग फ्रेम में इस काग़ज़ को रखके लम्प से ४-५ इञ्च की दूरी पर सामने आलोकित वा एक्स-

* पी० ओ० पी० कागज में इस वार्निश के लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है। पी० ओ० पी० के चित्र को केवल रोलर कर देने ही से वह बहुत उत्तम होजाता है।

पोज़ करके एक वा दो मिनिट तक एक्सपोज़ करने ही से चित्र प्रस्तुत हो जाता है। घने फ़िल्म् वाले नेगेटिब में कुछ इससे अधिक देरी लगती है। दिन में इसके छापने को ५-७ सेकण्ड बहुत हैं। इसके छापने के लिये धूप की कोई अवश्यकता नहीं है। चित्र आलोकित करने के पीछे निम्न-लिखित परिस्फोटन अरक से डेवेलप कर लेना चाहिए।

नं० १	जल	१०	आउन्स
	मेटौल... ...	७	ग्रेन
	सोडा सलफाइट	½	आउन्स
	हाइड्रोकिनोन ...	३०	ग्रेन
	सोडा कार्बनेट दानेदार	४००	ग्रेन
नं० २	ब्रोमाइड पोटासियम	१०	ड्राम
	जल	१०	ड्राम

नं० १ के अरक का २ ड्राम १ आं० जल और नं० २ के अरक की २-४ बूंदों को मिलाकर डेवेलप करने से बहुत थोड़ेही समय में चित्र दिखाई देने लगता है।

हाइपो-एसिड-फिक्सिंग बाथ

हाइपो	१६	आउन्स
जल	६४	आउन्स

पीछे से निम्नलिखित अरक मिलालो।

जल	१०	आउन्स
सोडा सलफाइट	१	,,
एसिटेट एसिड	६	,,
एलम चूर्ण	१	,,

चित्र को १०-१५ मिनिट तक इस बाथ में रखने के अनन्तर उसे एक घण्टे तक जल में धोओ और तब सुखा लो।

[क्रमशः]



श्री मान्यवर रावबहादुर जस्टिस पण्डित महादेव गोविन्द रानाडे,
एम्. ए., एल-एल. बी., सी. आई. ई., जे. पी.

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] अप्रैल १९०१ ई० [संख्या ४

अमरावती

अहो ! यह अमरावती सुहाई ।
अखिल-भुवन-सुखमा-समूह लहि
पाई बहुरि बड़ाई ।

जहां बिहार करन कारन जन
कोटिन करत उपाई ।
पै पावत कोऊ या सुख कों
जन्म अनेक गँवाई ॥

यहँ सदा ऋतुराज बिराजत
सब दिन मदन सहाई ।
सीतल मन्द सुगन्ध पौन जहँ
हरै खेद समुदाई ॥

कंचन भूमि रत्नमय तरवर
नव पल्लव उमगाई ।
झुके भूमि भरि भारन सों निज
संपति गर्ब मिटाई ॥

चहुँ मन्दार उदार कल्पतरु
चन्दन सुरभि बढ़ाई ।
पारिजात सन्तात बितानिनि
सोहत अति छबि छाई ॥

फूले फले अघाय सबै तरु
नखसिख लौं सरसाई ।
भरे लेत सुमननि भरि झोरिन
देववधू नियराई ॥

बिकसीं लता सुमन-मनमोहिनि
तरुन तरुन लपटाई ।
मधुकर-निकर झुण्ड झनकारनि
रस-बस रहे लुभाई ॥

नाचैं मोर मोद मद माते
कोकिल कल किलकाई ।
बिहरत हरत चित्त पच्छीगन
चह-चहात हरखाई ॥

कंचन हरिन किलोल करत बहु
शाखामृग अधिकाई।
मधुर बैन बोलत सब मिलि जुलि
मन नहिं नेक सकाई॥

रत्नजटित सोपान मनोहर
देखत बनत निकाई।
सुधा सरोवर अतिछबि छाजत
निर्मल नीर बहाई॥

कनक कञ्ज कल्हार कुशेशय
इन्दीवर मन भाई।
करत केलि कारण्डव सारस
हंस मधुप सचुपाई॥

तरल तरङ्ग रङ्ग बहु भांतिन
दरसावै निपुनाई।
बिहरैं बिबुध बारबनितनि सँग
अङ्ग अङ्ग अरुझाई॥

लताकुञ्ज महँ जुग जुग मिलिकै
देववधू हरखाई।
करत किलोल लोल लोचनि सों
मन हरि लेत सवाई॥

कहुं रम्भा उरवसी मेनका
माल्यवती मनभाई।
मिलि तिलोत्तमादिक बरनारी
सब जयमाल बनाई॥

पहिरावत, आवत जे छिति तें
सुकृती जन समुदाई।
कहत, अहो! या पुण्यलोक मैं
बिहरहु तुम हरखाई।

——

राजा भोज

भोज का नाम किस हिन्दूसन्तान को अविदित है? बाल-वृद्ध-युवा सभी ने भोज का कुछ न कुछ वृत्तान्त सुना होगा। भारतवर्ष भर में उसका नाम प्रख्यात है। अहा! वह कैसा प्रतापी राजा, प्रसिद्ध कवि और विद्यानुरागी था! उसके सम्बन्ध में कैसी कैसी विचित्र कहानियां पाई जाती हैं। परन्तु शोक का विषय है कि अबतक यह निश्चय नहीं हुआ है कि वह कौन सा राजा था जो अपने सर्वोत्तम कार्य्यों से अपनी इतनी प्रसिद्धि छोड़ गया, क्योंकि खोज करने से बहुत से राजे भोज नाम के पाए जाते हैं जिनके इतिहास पूर्णतः प्रगट नहीं हुए हैं, और किसी विश्वासदायक प्रमाण के न होने से कथा-वार्त्ताओं से पूरा पता नहीं लग सकता। कर्नल टाड कहते हैं "जब तक हिन्दू-साहित्य शेष रहेगा, भोज प्रमार और उसकी सभा के नवरत्नों का नाम नहीं मिट सकता"। परन्तु स्वयं वह भी मुख्य राजा भोज का पता नहीं लगा सके, क्योंकि उसी नाम के तीन राजाओं को जान कर वह कहते हैं—"यह कहना कठिन है कि इन तीन राजाओं में कौन सबसे बड़ा है, क्योंकि सबके सब साहित्य और कला कौशल के प्रसिद्ध अभिभावक जान पड़ते हैं"। अतः इस विषय का किंचित् विस्तृत वर्णन और छान बीन करना अनावश्यक और अनुचित न होगा।

भोज शब्द संस्कृत की "भुज" धातु से निकला है जिसका अर्थ "भोगना" है। ऋग्वेदसंहिता के तृतीय भाग में (३ अध्याय २० वर्ग के ७ वें श्लोक में) यह शब्द पहिले ही पहल जातिवाचक संज्ञा की भांति "यज्ञस्य हीं सौदास क्षत्रियों" के अर्थ में बरता गया है, जिससे ज्ञात होता है कि उनमें से किसी व्यक्ति का नाम भोज अवश्य रहा होगा। तत्पश्चात् महाभारत के आदिपर्व के तीसरे अध्याय में भी यह शब्द जातिवाचक संज्ञा की

भांति "ब्रह्म के बेटों" के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। यह नाम पांडवों की माता कुन्ती के अन्नदाता पिता के लिये भी आया है, जो सूर का फुफेरा भाई था और कुन्तीभोज के नाम से पुकारा जाता था। सूर बासुदेव और पृथा का पिता था। पृथा पांडु से ब्याहे जाने पर कुन्ती कहलाई। कर्नल विलफोर्ड ने कदाचित् इसी भोज को जरासंध का असामी कहा है। उसने मगों को गङ्गा किनारे अपने राज्य में बुलाया और उनमें से एक से अपनी लड़की ब्याह दी, जिससे भोजकों के १८ घराने हुए और उसका राज्य "कर्क देश" कहा गया। कर्नल साहब ने एक और भोज का वर्णन किया है जो भोजपुर ग्राम का स्वामी और कृष्णचन्द्र का मित्र और सम्बन्धी था। जान पड़ता है कि यह राजा उसका वंशोद्भव था और उसने अपना नाम कुल के अनुसार भोज रख लिया था, क्योंकि महाभारत के आदि पर्व में जो वृत्तान्त दिया है उससे प्रगट होता है कि द्रौपदी से ब्याह करने के लिये भोज नाम का एक भोजपुरिहा राजा भी अश्वत्थामा की मंडली में पांडवों का प्रतिवादी होकर गया था। यथा—"अश्वत्थामा च भोजश्च सर्व्वशस्त्रभृतांवरौ"। इसकी राजधानी मृत्तिकावती कर्मनासा नदी के तट पर स्थित थी।

रघुवंश में एक भोज को अवध का सूर्यवंशी राजा कहा है। फिर उड़ीसा के इतिहास में एक भोज राजा मिलता है जिसने ईसा से प्रथम सन् १८० से ५३ तक १२७ वर्ष राज्य किया। वह वीर, दानी, न्यायी और दयालु राजा था और उसकी सभा ७५० उत्तमोत्तम कवियों से सुशोभित थी, जिनमें ७५२ श्लोकों के (जो चाणक या नाटक या महानाटक के नाम से पुकारे जाते हैं,) रचयिता कालीदास मुख्य थे। राजा भोज ने नावों, जुलाहे की कलों, पहियेदार गड़ियों का आविष्कार किया, अथवा पहिलेपहल उसी के समय में सर्वसाधारण को इनका व्यवहार ज्ञात हुआ। उसके समय में सिन्धु देश से यवनों ने इस देश पर बड़ी भारी सेना लेकर चढ़ाई की। परन्तु भोज ने उनको हराया और उनका नाश किया और उसके पश्चात् उनके बहुत से नगरों और अधिकारों को ले लिया। उसके पीछे विक्रमादित्य सिंहासन पर बैठा जो उसका भाई या बेटा था। एक बङ्गाली लेख "भानुमती" भोज को विक्रम का श्वसुर बताता है। परन्तु यह सब वृतान्त केवल रचे हुए और झूठ जान पड़ते हैं। इसी प्रकार तीन भोज बङ्गाल के राजा कहे गए हैं। परन्तु वह भी राज्यकाल के अतिविस्तृत होने के कारण विश्वासयोग्य नहीं समझे जा सकते। अतः उनको त्याग कर अब उस भोज का वर्णन किया जाता है जिसका वृत्तान्त कर्नल टाड ने किया है। एक जैनलिपि के अनुसार वह कहते हैं कि राजा भोज स० ६३१ में हुआ था। वह प्रमार वंश का था और मालवा में राज्य करता था। एबे वेर्ट्रेंड, मीरअली अफ़सोस के कथनानुसार, कहता है कि भोज स० ५४२ में हुआ था और टेफनथेलर उड़ीसा के इतिहास में कहते हैं कि एक भोज स० ४२६ में हुआ था, जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये तीनों भोज एक ही रहे होंगे। यह केवल ऐतिहासिक प्रमाण न होने के कारण विलग विलग समझे गए हैं। टामस के प्रिन्सेप में लिखा है कि मुञ्ज के पश्चात् राजा भोज पांचवीं शताब्दि के अन्त में सिंहासन पर बैठा और यह वही है जिसका वर्णन टाड ने प्रथम भोज कह कर किया है। कर्नल का द्वितीय भोज स० ७२१ में हुआ था। ऐतपूर में जो अङ्कित लेख मिला था। उसके अनुसार भोज गुहादित्य का पुत्र था। उसकी सातवीं पीढ़ी में कालभोज नाम का राजा हुआ "जो सूर्य्य के समान तपता था"। कालभोज की आठवीं पीढ़ी में शक्तिकुमार स० १०३४ में बड़ा प्रतापी हुआ। कर्नल टाड कहते हैं कि इस लेख का प्रथम भोज वही है जिसको उन्होंने द्वितीय भोज माना है। सम्भव है कि इसी भोज का वर्णन "वृद्ध भोज" कह कर किया गया हो जिसकी सभा में बाणभट्ट और मयूर नाम के प्रसिद्ध कवि हुए थे,

जिन्होंने उसके आज्ञानुसार "सूर्यशतक" नाम की अपूर्व पुस्तक रची और सूर्यदेव के प्रसन्न कर अपने कुष्ठरोग से मुक्ति पाई। ये सब मानतुंगेश्वरी के समकालोद्भव थे। अब यदि यह मान लिया जाय कि बाण और मयूरादि कवि उसकी सभा में थे तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह विद्वानों का बड़ा भारी सहायक था और अवश्य अगणित कवियों और गुणवानों से घिरा रहता था। परन्तु इस बात का कि वृद्धभोज और कर्नल टाड के द्वितीय भोज दोनों एक ही हैं, अभी पूर्ण निश्चय नहीं हुआ, क्योंकि प्रोफ़ेसर विलसन को भी एक लेख आबू पर्वत पर मिला था जिसमें भोज और कालभोज के नाम पाए जाते हैं। परन्तु यहां ९ पीढ़ी का अन्तर न होकर वे पिता और पुत्र की भांति जान पड़ते हैं। परन्तु निम्नलिखित वंश-वृक्ष से स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि वे एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। ऐतपूर के लेखानुसार उनकी पीढ़ियां इस प्रकार हैं–१ गुहादित्य, २ भोज, ३ महेन्द्र, ४ नाग, ५ सैल्य, ६ अपराजित, ७ महेन्द्र, ८ कालभोज, ९ खेमान, १० भर्तृपद, ११ सिंग जी, १२ श्रीउल्लट, १३ नीरवाहन, १४ सालिवाहन, १५ शक्तिकुमार। पर आबू पर्वत के लेखानुसार वे इस प्रकार हैं–१ वप्पाक, २ गोहिल, ३ भोज, ४ कालभोज, ५ भर्तृभट्ट, ६ समहापिक, ७ खुम्मान, ८ अल्लट, ९ नरवाहन, १० शक्ति, ११ सुचिवर्ण, १२ नरवर्म, १३ कीर्तिवर्म, १४ वैरीसिंह, १५ विजयसिंह, १६ अरिसिंह, १७ विक्रमसिंह, १८ समत सिंह, १९ कुमारसिंह, २० मथनसिंह, २१ पद्मसिंह, २२ जैतसिंह, २३ तेजसिंह, २४ समरसिंह। यह २४ राजे जैनी थे और मेवाड़ के सूर्यवंशियों में से थे। अन्तिम राजा सन् १२८६ ई० में हुआ। अतएव सरस्वतीकण्ठाभरण आदि काव्य की पुस्तकें उसी पहले भोज से सम्बन्ध रखती हैं। कर्नल टाड का तृतीय भोज वही है जो धार का राजा था और जिसका वर्णन भोजप्रबन्ध में हुआ है। कर्नल स्टैंसी ने एक ताम्रपत्र पाया था जिसमें कन्नौज के दो राजों का नाम मिला था और जिसका जोड़ मिस्टर कासिरट ने सारन में पाया। कर्नल स्टैंसी के लेख में वैशाख मास सं० ६५ (देशो) और तिक्कारिका ग्राम का दान लिखा है, जो काशी के सन्मुख गंगा के बाएं किनारे पर स्थित था और दाता का नाम विनायकपाल था। उसके पुर्खों का नाम देवशक्ति से प्रारम्भ होता है और उसमें भोज नाम के दो राजे पाए जाते हैं, जिनमें से एक रामभद्र का और दूसरा महेन्द्र पाल का पुत्र था। उनके क्रम इस प्रकार हैं–(सारन के लेखानुसार) १ देवशक्ति, २ वत्सराज, ३ नागभट्ट, ४ रामभद्र, ५ भोज, ६ महेन्द्रपाल, ७ भोज, ८ विनायक पाल। ग्वालियर के वैष्णव मन्दिर में एक लेख में चक्रवर्ती राजा भोज का वर्णन किया है, जो सन् ८७६ ई० में राज्य करता था। पुनः थानेश्वर से पश्चिम १५ मील पर सरस्वती के किनारे एक ग्राम के मन्दिर की दीवारों पर एक अङ्कित लेख है जिसमें येहोवा के भोज का नाम मिलता है। बड़ी कठिनता से दस राजाओं का नाम पढ़ा जा सकता है। वे ये हैं–१ महेन्द्रपाल, २ जतुल, ३ नाम पढ़ा नहीं जाता, ४ वजरट, ५ यज्ञिका, ६ सोग्ग, ७ पूर्ण, ८ देवराज, ९ रामभद्र, १० भोज। जेनरल कनिंगहम के कथनानुसार दो लेख हैं और दोनों मिलाकर १० नाम मिलते हैं। एक में केवल दो नाम मिलते हैं, अर्थात् रामभद्र और भोज और भोज के सन्मुख स० २७६ लिखा है। परन्तु वे कहते हैं कि यह सम्वत् कन्नौज के राजा श्रीहर्ष का है जो सन् ६०७ ई० में आरम्भ हुआ था।

अतएव भोज ने सन् ८८२ ई० में इस लेख को खुदवाया था। "अब हम जानते हैं कि इसी समय कोई राजा भोजदेव ग्वालियर का सबसे बड़ा राजा था, क्योंकि स्वयं उसीके लेख से जो शिला पर लिखा है, स० ९३३, सन् ८७६ ई०, हस्तगत होता है। राजतरंगिणी से भी हमको ज्ञात होता है कि किसी राजा भोज ने काश्मीर के शंकरवर्म से, जो सन् ८८३ से ९०१ ई० तक राज करता रहा, युद्ध किया था। अतः हमको पूर्ण संतोष है कि सब लेख एक ही राजा भोजदेव का उल्लेख करते

है जो कन्नौज का राजा (सन् ८७५ से ९०० ई० तक) रहा—(Journal Asiatic Society, Vol. XXXIII.) तस्मात् यह स्पष्ट ग्रैार सत्य जान पड़ता है कि ग्वालियर, पेहिवा, सारन ग्रैार बनारस वाले अङ्कित लेखों में उसी भोज से आशय है जिसका वर्णन राजतरंगिणी में मिलता है।

अब धार का राजा भोज शेष रहता है। भोज-प्रबन्ध, भोजचम्पू ग्रैार भोजचरित्र के अनुसार वह सिंधुल का पुत्र ग्रैार सिंधु का पैात्र था, जो मुंज के पश्चात् सिंहासनारूढ़ हुआ। उसका देश मालवा, प्राचीन ग्रैार विख्यात् विद्या का स्थान था ग्रैार उसकी प्रजा अपनी सुन्दर चाल चलन ग्रैार उच्च सभ्यता के लिये प्रशंसित थी। कालिदास ने उसके प्रताप का वर्णन अपनी अनेक पुस्तकों में किया है। भोजप्रबन्ध के रचयिता वल्लभ पण्डित के कथनानुसार मुंज सिंधुल का छोटा भाई था। सिंधुल ने भोज को राजकाज के अयोग्य समझकर राज्य अपने भाईही को दिया, परन्तु भोजचरित्र इसके विरुद्ध कहता है कि एक दिन सिंधु मृगया (शिकार) करने गया था ग्रैार जब वह एक नदी के किनारे अकेला पहुंचा तो उसने एक नवीनोत्पन्न लड़के को थोड़ी सी मूंज घास पर पड़ा हुआ पाया ग्रैार उसे लाकर अपनी रानी पद्मावती को पालने को दिया। दोनो लेखक इस बात में सहमत हैं कि भोज ने प्रसन्नता पूर्वक ५५ बर्ष ७ महीने ३ दिन तक राज्य किया। केवल बीच में किसी योगी के आ जाने से उसके शासन काल में कुछ अन्तर पड़ा, क्योंकि उसने एक शरीर से दूसरे शरीर में जीवात्मा भेजने की विद्या सिखाने के बहाने राजा की जीवात्मा को एक शुक के शरीर में प्रेरित कर दिया ग्रैार स्वयं राजा के शरीर में पैठ कर वह राज्य करने लगा। यूरोपियन लोग इन बातों में विश्वास न करके कहते हैं कि मुंज के जन्म की कथा केवल उसके नाम का कारण बताने के लिये कल्पित करली गई है। तथा प्रोफ़ेसर लैसन की सम्मति है कि मुंज वास्तव में भोज का चाचा था। पर जब सिंधुला अपनी राजधानी को छोड़ दक्षिण में लड़ने गया था, तब मुंज ने अन्याय से राज्य पर अधिकार कर लिया। यह इस कथन से विदित होता है कि किसी समय एक ज्योतिषी ने भविष्यद्-वाणी की कि मुंज अपने भाई का राज्य ले लेगा। इस पर सिंधुला ने आज्ञा दी कि मुंज का सिर काट लिया जावे, परन्तु पीछे से अपनी बिना विचारी आज्ञा पर पश्चात्ताप कर उसने मुंज को सर्वस्व दे दिया ग्रैार स्वयं अपना विलग राज्य स्थापित करने के लिये वह दक्षिण में चला गया। उसी प्रकार योगी की कथा से जान पड़ता है कि यह केवल मुख्य बात छिपाने के लिये बनाई गई थी। वह यह है कि दक्षिण से आक्रमण होने के कारण भोज को अपने राज्य से भाग जाना पड़ा ग्रैार उसके स्थान पर एक चालूक्य राजा सोमेश्वर सन् १०४० से १०४९ ई० तक राज्य करता रहा। भोज स्वाभाविक मृत्यु से मरा ग्रैार राज्य अपने पुत्र गजानन्द को छोड़ गया। भोज का बंश जो उसके जीवनचरित्र लिखनेवालों ने दिया है हरौती के मधुकरगढ़ वाले लेख से भी, जिसको कर्नल टाड ने पाया था, प्रमाणित होता है। वह इस प्रकार है—१ सिन्धु, २ सिन्धुल, ३ भोज, ४ उदयादित्य ग्रैार ५ नरवर्म। परन्तु अन्तर केवल इतना ही पड़ता है कि इसमें भोज के पश्चात् राज-सिंहासनाधिकारी उदया-दित्य होता है जो केवल एक सम्बन्धी था ग्रैार जिसके बंश के लोग कई पीढ़ी तक धार के सिंहासन पर रहे। एक दूसरा अंकित लेख जो नागपुर के समीप बेयनी गङ्गा के पश्चिम किनारे वाले मन्दिर पर मिला, सन्तोषदायक रीति से न पढ़ा गया, परन्तु उसीका जोड़ प्रोफ़ेसर लैसन ने सतारे में ताम्रपत्र पर पाया ग्रैार बड़ी सावधानी से उसका एक एक अक्षर पढ़ा। अतः उसके आशय की शुद्धता में कोई सन्देह नहीं है। यह लेख सरस्वती को नमस्कार करके प्रारम्भ होता है ग्रैार प्रमार बंश की उत्पत्ति वर्णन करने के उप-रान्त कहता है कि इस कुल में बैरीसिंह नाम का

कोई राजा उत्पन्न हुआ जो पृथ्वी पर राज करके अपने प्रताप से सुरलोक में इन्द्र को भी लज्जित करता था। उसके लड़के सीयक के दो बेटे हुए, मुञ्ज और सिंहराज, जिनमें से मुञ्ज बड़ा होने के कारण सिंहासन पर बैठा। पुनः सिंहराज के बल बीरता का दर्शन करके भोज के सिंहासन पर बैठने का वृतान्त कहता है। निस्सन्देह यही भोज भोजप्रबन्ध में वर्णित हुआ है। पर इस लेख में उसकी अप्रतिम बीरता और अनेक भारी भारी विजयों के अतिरिक्त और किसी बात का वर्णन नहीं किया है। न तो उसके नवरत्न और न अन्य विद्वानों का पता है जिनके वर्णन में भोजप्रबन्ध का तीन चौथाई भाग लिखा गया है। किसी न किसी प्रकार यह निश्चय है कि वाक्यप्रदीप, राजमृगाङ्क और राजमार्तण्ड आदि योगसूत्रों की व्याख्या या तो उसकी रचित हैं या उसकी सहायता से रची गई हैं। भोज के मरने पर देश में शत्रु लूट मार करने लगे और सब जगह अराजकता छा गई, यहां तक कि अन्त में उदयादित्य नाम के बन्धु (सम्बन्धी) ने राज्य अपने हाथ में ले लिया और देश में सुप्रबन्ध कर प्रजा को सुखी किया। उसका पुत्र लक्ष्मदेव बड़ा प्रतापी हुआ। उसके पश्चात् नरवर्मदेव, यशोवर्मदेव, जयवर्मदेव, और लक्ष्मीवर्मदेव राजा हुए। इसमें सन्देह नहीं कि लक्ष्मदेव १२ वीं शताब्दि के प्रारम्भ में राज्य करता था, क्योंकि सतारा वाले लेख में लक्ष्मदेव के सन्मुख संवत् ११६१ अर्थात् सन् ११०४ ई० लिखा है और उसके भ्राता नरवर्मदेव के पश्चात् यशोवर्मदेव ने मिती कार्तिक बदी अष्टमी संवत् ११९१ में अपने पिता का श्राद्ध किया। अब यदि यह संवत्सर का श्राद्ध १० वर्ष पीछे किया गया हो तो नरवर्मदेव स० ११८१ और ११९० के बीच किसी समय मरा होगा, और यदि यह मान लिया जावे कि उसने २५ वर्ष तथा उसके पिता ने १५ वर्ष राज्य किया था तो भोज के राज्य का अन्त स० ११४० से ११५०, या सन् १०८३ से १०९३ ई० के बीच में पड़ता है और उसका शासनकाल ११वीं शताब्दि से प्रारम्भ होता है। कुमारपालचरित से प्रगट होता है कि मुञ्ज स० १०७२ या सन् १०२० ई० में जीवित था जब कि दुर्लभ ने उससे तीर्थस्थान में भेट की। और भोजचरित और भोजप्रबन्ध से ज्ञात होता है कि भोज ने ५५ वर्ष ७ महीने ३ दिन राज्य किया था। अतः केवल छः वर्ष शेष रहते हैं जिनमें मुञ्ज अथवा उदयादित्य ने राज्य किया होगा। मुञ्ज को बहुतों ने वाक्पति का उपनाम समझा है और वैरीसिंह और सीयक को एकही बतलाया है, परन्तु इसका निश्चय नहीं हुआ। तथापि भोज के राज्य-समय का निर्णय कई अङ्कित लेखों को मिला कर किया गया है। यथा सितारा और नागपुर की शिलाओं से लक्ष्मदेव और नरवर्म सं० ११६१ अर्थात् सन् ११०४ ई० में राज्य करते जान पड़ते हैं। उज्जयिनी के एक लेख से यशोवर्म का समय स० ११९१ या सन् ११३७ ई० और दूसरे से उसके पुत्र लक्ष्मीवर्म का समय स० १२०० या सन् ११४३ ई० और तीसरे से यशोवर्म के पौत्र अर्जुनवर्म का समय सं० १२७२ या सन् १२११ ई० ज्ञात होता है, और सिहोर के ताम्रपत्र से उसकी सत्यता प्रगट होती है। इससे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि भोज के राज्य का अन्त सन् १०८३ ई० में हुआ। यदि भोजप्रबन्ध का शासनकाल सत्य है तो वह सन् १०२६ ई० में धार की गद्दी पर बैठा होगा। इस प्रकार वाक्पति अथवा मुञ्ज का राज्यसमय ५० वर्ष होता है। बेन्टली साहब के अनुसार भी भोज के राज्य का अन्त सन् १०८२ ई० में हुआ था जिससे स० १०८३ से केवल एकही वर्ष का अन्तर पड़ता है; परन्तु लैसन साहब से दस वर्ष का अन्तर पड़ता है, क्योंकि उन्होंने नरवर्म का मृत्युकाल सन् ११२० ई० में मान लिया है। परन्तु यह अंतर बहुत बड़ा नहीं है और साधारणतः हम कह सकते हैं कि भोज प्रमार ११वीं शताब्दि के मध्य में हुआ था और उसका शासनकाल लगभग १०२६ से १०८३ ई० तक था॥

दारजिलिङ्ग का इतिहास

जिस समय लार्ड हेष्टिङ्गस यहां के गवर्नर जेनरल थे उस समय नेपालिओंने सिर उठाया था और वे अगरेज़ों के अधिकृत देशों पर आक्रमण करने लगे थे। उसी समय में सिकिम का राज्य भी किसी प्रकार से दबा हुआ न था, पर नेपालिओं ने उसके राज्य का कुछ भाग दबा लिया। यह देख सिकिम के राजा ने अंगरेज़ों से सहायता मांगी। इसपर सेनापति अक्टरलोनी साहेब के सिकिम जाने की आज्ञा मिली। इन्होंने जातेही नेपालिओं को युद्ध में परास्त किया। यह देख नेपाल के राजा ने अपने राज्य का एक बहुत बड़ा भाग दे अंगरेज़ों से सन्धि की और सिकिम राज्य का जो भाग ले लिया था उसे लैाटा दिया। इसके कुछ वर्षों पीछे फिर सरहद के बारे में सिकिम और नेपाल से झगड़ा उठा। फिर पहिली सन्धि की लिखत के अनुसार अंगरेज़ पञ्च माने गए। सन् १८२८ ईसवी में कप्तान लयेड इस कामके लिये चुने गए। कप्तान लयेड मालदह के 'कमरसियल रेसीडेन्ट' मिस्टर जे. डबल्यू. ग्रान्ट के साथ ले पहाड़ी दुर्गम पथ पर चल रिंकिंपं तक बढ़े चले गए। दारजिलिङ्ग के सुन्दर दृश्य और स्थान सबसे पहिले इन्हीं लोगों ने देखे थे। सिकिम से लैाटने पर इन लोगों ने गवर्नर जेनरल लार्ड बेंटिङ्क के दारजिलिङ्ग के विषय में लिखा कि भारतवर्ष की राजधानी कलकत्ते के पास ऐसा सुन्दर स्थान स्वास्थनिवास होने योग्य है। दारजिलिङ्ग की ऊंचाई ६५०० से ७५०० फीट तक की है। इससे इसकी जल वायु लगभग लन्दन से मिलती जुलती है। ८००० फीट ऊंची होने से ठीक लन्दन सी सर्दी गर्मी होती है। सिमला, मन्सूरी आदि स्थान हैं, परन्तु वे कलकत्ते से बहुत दूरी पर हैं और यह बहुत निकट है। कलकत्ते वालों के लिये यहां सुबीता है। यह बात लार्ड बेंटिङ्क को भाई। उन्होंने सरवेयर जेनरल मेजर हर्बर्ट के दारजिलिङ्ग की देख भाल करने के लिये भेजा।

उस समय दारजिलिङ्ग सिकिम राज्य के अधिकार में था। इसलिये अंगरेज़ों ने सिकिम के राजा से उसे यह कहके मांगा कि यदि यों न दें तो इसका मूल्य ठहरा लें। अथवा इसके बदले में कोई दूसरा स्थान ले लें। परन्तु अनेक सन्देहों में पड़ सिकिम के राजा ने इसे अस्वीकार किया।

समय के फेर से सन् १८३४ और ३५ ईसवी में फिर नेपालिओं ने सिकिम राज्य की तराई नामक बस्ती पर चढ़ाई की। उस समय सिकिम राज के पास गोर्खाओं से भिड़ने योग्य सेना न थी। विवस फिर उसे अंगरेज़ों की सहायता मांगनी पड़ी और गवर्नमेंट ने आनन्द से देनी स्वीकार की। कर्नल लयेड ने एक बड़ी सेना ले सिकिम की यात्रा की और जाते ही नेपालिओं को वहां से मार भगाया। इसके पलटे में महाराजा सिकिम ने बड़ी प्रसन्नता से सन् १८३५ के फ़रवरी में दारजिलिङ्ग अंगरेज़ों को दी।

सन् १८४० ईसवी में नेपाल के अंगरेज़ी रेसीडेन्ट डाक्टर कैम्बल साहेब दारजिलिङ्ग के सुपरइनटेन्डेण्ट नियुक्त हुए। १८४१ साल से अंगरेज़ सर्कार महाराज सिकिम को तीन हज़ार रुपया साल करस्वरूप देने लगी। १८४६ से इसका दूना अर्थात् ६ हज़ार का साल देने लगी। इसी समय से दारजिलिङ्ग में लोगों की बस्ती बढ़ने लगी। विलायती अंगरेज़ भूमि मोल ले घर बनाने लगे। बज़ार बसाया गया। रुग्न सिपाहिओं के रहने के लिये बारिकें बनवाई गईं। दिनों दिन दारजिलिङ्ग की उन्नति देख नेपाली भोटिए और सिकिम वाले आ आ के बसने लगे। बहुतेरे पेनशनिए और बङ्गाली स्वास्थ सुधारने के वहां जाकर रहने लगे। पहिले वहां किसी तरह का बनिज ब्योपार न था। पर धीरे धीरे कस्तूरी, सोना, नोन, खान का नोन, सोडा, पशमीना, तिब्बती घोड़े प्रभृति चीज़ों का व्यापार

होने लगा। डाक्तर कैम्बल प्रतिवर्ष पहाड़ के नीचे ददरी का मेला करवाने लगे। इसमें आस पास से भांति भांति की वस्तु ले अनेक व्यापारी आने लगे। डाक्टर कैम्बल और उनके बन्धु आए हुए व्यापारियों को अच्छी चीज़ों के लिये पुरस्कार देते। इससे यह मेला अच्छा जमा और व्यापार भी बढ़ने लगा।

यों ही दारजिलिङ्ग एक अच्छी नगरी होगई। सन् १८३९ में वहां सौ मनुष्य की भी बस्ती न थी; परन्तु सन् १८४९ ईसवी में १० हज़ार लोगों की बस्ती हो गई। और सन् १८९१ को मनुष्यगणना में दो लाख की बस्ती जांची गई थी।

सिकिम के दीवान से दारजिलिङ्ग की यह उन्नति सही न गई। सिकिम की महारानी के यह सगे नातेदार थे, इससे उस राज्य में इनकी बहुत कुछ चलती थी। सिकिम के लामा और प्रधान प्रधान लोग भी इनकी देखा देखी कुढ़ने लगे। उस समय सिकिम, भूटान और नेपाल वाले आपुस में दास व्यवसाय किया करते थे। धीरे धीरे उनका यह व्यवसाय घटने लगा। क्योंकि ऊपर कहे तीनों राज्यों से ऐसे लोग जिन्हें उस देशवाले दास बनाना चाहते, दारजिलिङ्ग में भाग आया करते थे। परन्तु ऊपर कहे तीनों राजवाले दारजिलिङ्ग से लोगों को चुराने लगे। अंगरेज़ी राज्य के हत्यारे या दूसरे अपराधी सिकिम में भाग जाते तो वहां की सरकार उन्हें पकड़ के अंगरेज़ों को नहीं लौटाती। सिकिम और भूटान आदि राज्यों में जैसी दास बेचने की प्रथा थी वैसी ही प्रथा अंगरेज़ी अधिकृत स्थानों में चलाने के लिये वहां वाले बार बार डाक्टर कैम्बल से अनुरोध करते रहे, परन्तु घृणा से डाक्टर साहेब ने इसे अस्वीकार किया।

सन् १८४९ में डाक्टर हूकर और डाक्टर कैम्बल सिकिम के राजा को आज्ञा ले सिकिम में घूमने गए। औचक एक दिन सिकिम वालों ने इन दोनों डाक्टरों को कैद कर लिया। महाराज के प्रधान मन्त्री ने उन डाक्टरों से कहा कि सिकिम से जितने बिके हुए दास तथा दूसरे अपराधी यहा से भाग के अंगरेज़ी अधिकार में गए हैं, उन सभों को यहां लौटा दो और आपके यहां के जो लोग हमारे राज्य में आए हैं, उनकी आशा छोड़ दो तो तुम लोग छोड़ दिए जाओगे और नहीं तो सिकिम में कैद रक्खे जाओगे। यह सुनते ही डाक्टर कैम्बल ने अंगरेज़ सरकार को सब हाल लिख भेजा। इस समाचार के पहुंचते ही यहां से लिखा गया कि जब कभी काम पड़ने पर अंगरेज़ों से सिकिम वाले जो सहायता मांगा करते थे उन्हें दी जाती थी। आगे अब उसकी आशा न रक्खें और डाक्टर कैम्बल तथा डाक्टर हूकर का जो एक बाल भी बांका हुआ तो सिकिम के राजा उसका पूरा फल भोगेंगे। यह सुनते ही सिकिम वालों ने दोनों डाक्टरों को चट पट छोड़ दिया।

इस अपमान का पलटा लेने की इच्छा से सन् १८५० ईसवी के फरवरी महीने में हथियारबन्द कुछ सेना ले ये लोग रङ्गीत नदी उतर सिकिम के भीतर घुसे। इन्होंने तराई प्रदेश पर अपना अधिकार जमा उत्तर में रम्मन नदी, पूर्व में रङ्गीत और तिस्ता नदी, और पश्चिम में नेपाल सरहद्द के बीच के सम्पूर्ण प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा लिया और दारजिलिङ्ग के लिये जो वार्षिक छः हज़ार रुपया दिया जाता था, वह भी बन्द कर दिया। ये नए अधिकृत स्थान भी दारजिलिङ्ग के सुपरिन्टेन्डेण्ट के अधिकार में कर दिए गए।

उधर महाराज सिकिम ने अपने दीवान से अधिकार ले लेने पर कुछ दिनों तक उनसे और अंगरेज़ों से मेलजोल बना रहा। परन्तु दीवान से बहुत ही निकट की नातेदारी थी, इससे फिर कुछ दिनों के अनन्तर राजा ने उसे दीवान बना लिया। थोड़े ही दिन बीते होंगे कि फिर दारजिलिंग से मनुष्य चोरी जाने लगे। सहज उपाय से महाराज से मेलजोल बना न रहेगा, ऐसा

छुटका होते ही लाट साहेब की मन्त्रीसभा में यह सिद्धान्त निश्चित हुआ कि रम्मन नदी से उत्तर और रङ्गीत नदी से पश्चिम इस बीच में जितने स्थान हैं सब अपने अधिकार में कर लिए जांय, और जब तक अंगरेज़ के अपराधिओं को सिकिम वाले न लौटा दें और इस बात की पक्की लिखा पढ़ी न कर दें कि आगे ऐसा न होगा, तब तक अपना अधिकार वहां बना रहे।

ईसवी १८६० की पहिली नवम्बर को दारजिलिंग के सुपरिनटेण्डेण्ट थोड़ी सेना ले रम्मन नदी के उतर रिञ्चंपं तक बढ़े चले गए। अन्त में सिकिम वालों से हार कर लौट आए। फिर लेफटेनण्ट करनल गाउलर बहुत सी सेना ले सिकिम पर बढ़े। अनरेबुल एन्सली इडन इनके साथ दूत बन के गए। सेना तिस्ता नदी उतरी ही थी कि सिकिम के महाराज ने कहला भेजा कि गवरनर-जनरल साहेब ने जैसी संधि करनी विचारी है करलें, मुझे स्वीकार है। सन् १८६१ ई० की २८ वीं मार्च को एक नया सन्धिपत्र लिखा गया। महाराज चुफो नामग्यि भागे हुए थे, इसलिये माननीय इडेन साहेब के सामने आते लजाए। इसलिये उनके पुत्र युवराज सिक्यं नामग्यि ने इस संधि-पत्र पर स्वाक्षर किए। सन् १८६१ में युवराज सिकिम के राजा हुए। इन्होंने अंगरेज़ी सरकार से बड़ा मेल-जोल बढ़ाया। सरकार भी इनपर अनुग्रह प्रकाश कर सन् १८६२ से वार्षिक ६००० रुपया फिर देने लगी। सन् १८६८ ईसवी से ९००० कर दिया और १८७३ से पूरा बारह हज़ार का सालीना कर दिया और यह कह दिया गया कि प्रति दिन दारजिलिङ्ग की उन्नति हो रही है इसलिये रुपया नहीं बढ़ाया गया है, यह केवल अंगरेज़ सरकार की कृपामात्र है।

सन् १८६८ ईसवी में पदच्युत दीवान को फिर महाराज ने रखने का प्रस्ताव किया; परन्तु सन्धि-पत्र के अनुसार यह प्रस्ताव न माना गया।

सन् १८७३ ईसवी में महाराज सिक्यं नामग्यि ने अपने सौतेले भाई और बहिन आदि को साथ ले दारजिलिङ्ग में आ छोटे लाट श्रीमान जर्ज कैम्बल से भेट की। थोटाल सिक्यं नामग्यि इस समय सिकिम के महाराज हैं।

सन् १८९५ ईसवी में भूतपूर्व वङ्गेश्वर सर चर्ल्स ईलियट महाशय ने वर्त्तमान महाराज को अंगरेज़ी और हिन्दी भाषा सिखाने के लिये श्रीयुत शरच्चन्द्र दास, सी० आइ० ई०, महाशय को नियुक्त किया था।

इस समय सारे सिकिम का एक तिहाई राज अंगरेज़ी अधिकार में है; और साधारणतः यह दारजिलिङ्ग प्रदेश कहा जाता है।

अंगरेज़ी अमलदारी हो जाने पर दारजिलिङ्ग प्रदेश के अधिकांश पहाड़, नदी और ग्राम प्रभृति स्थानों के नाम हो गए हैं। अंगरेज़ी अधिकार में जितने नेपाली, भूटानी और दूसरे पहाड़ी दारजिलिङ्ग में आते हैं, उन्हीं लोगों ने ये नाम बनालिए हैं—जैसे जला पहाड़—इसका लेपचा नाम था कंगोल हो। महाकाल पहाड़, अबजरवेटरी हिल (Observatory Hill), गिध पहाड़, चौरस्ता (Mall road), काक झोरा, धोबी झोरा, पगला झोटिया बस्ती, जोर पथरी, काला पथरी, बामन पथरी, जोर बङ्गला, पुलबजार, भाटीघरा, सिपाही ढूरा, प्रभृति अनेक नाम हैं।

इस समय यह प्रदेश दिनों दिन उन्नत हो रहा है। ग्रीष्म काल में यहां वह चहल पहल रहती है कि जो अन्य स्थानों में कदाचित न देख पड़े। समय का प्रताप प्रबल है। पहिले जो नाममात्र को एक छोटा सा पहाड़ी ग्राम था, आज वही स्वास्थ निकेतन बन सहस्त्रावधि मनुष्यों का प्रतिवर्ष निवासस्थान बनता है।

श्री मान्यवर रावबहादुर जस्टिस पण्डित

महादेव गोबिन्द रानाडे,

एम. ए., एल-एल. बी., सी. आई. ई., जे. पी.,

कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास जी ने यथार्थ कहा है कि–

"धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्था"

परन्तु प्रथम यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि "महाजन" कौन यथार्थ में हैं। आज कल तो जिनके पास धन दौलत हो वेही "महाजन" कहलाते हैं, और साधारणतः वेही "बड़े आदमी" समझे जाते हैं जो धन-सम्पन्न हों, चाहे उनका आचरण और चरित्र कैसाही अधम और शोचनीय क्यों न हो। ऋषिश्रेष्ठ व्यास जी ने ऊपर उद्धृत किए हुए श्लोक में धर्म्म का अति सूक्ष्म गुण निरूपण करने के बदले केवल इतना ही कहा है कि जिस पथ पर श्रेष्ठ लोग चलें वही धर्मपथ है। इससे सरल और इससे सर्वमान्य धर्म का और कोई निरूपण नहीं हो सकता। यदि कोई वक्ता साधारण बुद्धि के श्रोतागणों के सन्मुख सत्य और न्याय पर गूढ़ दार्शनिक भावों को प्रगट करे तो कदाचित् कोई ही ऐसा श्रद्धालु भक्त होगा जो बिना एक अक्षर समझते हुए भी बैठा रह जाय और व्यास जी की व्याख्या सुनता रहे। परन्तु प्रति दिन देखने में आता है कि जहां श्रीरामचन्द्र और युधिष्ठिर की कथा सुनाई जाती है, बालक और स्त्रियां भी चित्त दे सुनती हैं। तात्पर्य्य यह है कि श्रेष्ठ पुरुषों के जीवनचरित्रों में कुछ ऐसी आकर्षणशक्ति है जो क्रमशः लोगों को "कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा" के सिद्धान्त को प्रमाणित कर देती है।

आज जिस महामान्य सज्जन का चित्र और चरित्र हम पाठकों के सन्मुख उपस्थित करते हैं, वह इस समय का एक ऐसाही "महाजन" था। प्रत्येक समय के महापुरुषों में एक प्रकार का वैलक्षण्य और उनके सद्गुणों में एक प्रकार की भिन्नता होती है जो वस्तुतः उस समय की आवश्यकताओं के अनुकूल है। महात्मा बुद्ध ने रणक्षेत्र में यश नहीं पाया, क्योंकि उस समय अहिंसा परमो धर्म्मः के सिद्धान्त को जनसमाज में आवशकता थी, परन्तु भगवान रामचन्द्र को अपने समय के दुष्ट और सत्य-द्वेषी राक्षसों को मारकर पृथ्वी का बोझ हलका करना था, इसीलिये गोस्वामी तुलसीदास जी ने उनको "रघुबीर" कह कर सम्मानित किया है। रानाडे महाशय के चरित्र और सिद्धान्तों में हम उन बातों को पाते हैं कि जो इस समय के अनुकूल हैं और जिनसे भारतवासियों को लाभ प्राप्त होने की आशा है। अंगरेज़ी शासन में हमलोगों को पूर्णरूप से सुख और शान्ति प्राप्त होने के कारण हमलोगों को रुचि विद्या-अध्ययन और समाज-संशोधन की ओर फिर गई है। इन विचारों के फैलाने और उनको दृढ़ करने में रानाडे महाशय ने बड़ा भाग लिया था।

महादेव गोबिन्द रानाडे का जन्म २० जनवरी सन् १८४२ को हुआ था। इनके पिता का नाम गोबिन्द अमृत रानाडे था। दक्षिण में नाम रखने की प्रथा यह है कि पहले निज का, फिर पिता का नाम और तब अल्ल, जैसे महादेव गोबिन्द रानाडे, काशीनाथ त्रिम्बक तैलङ्ग, इत्यादि।

रानाडे महाशय की शिक्षा का प्रारम्भ उनकी मातृभाषा में हुआ था। संवत १८५६ में जब उनकी अवस्था १४ वर्ष की हुई, तो वह अंगरेज़ी पढ़ने के हेतु पूना भेजे गए। एन्ट्रेन्स परीक्षा पास होने के पूर्व ही उनको दस रुपए और फिर बीस रुपए मासिक छात्रवृत्ति (स्कालरशिप) मिलने लगी। एन्ट्रेन्स परीक्षा स्थापित होने पर उन्होंने परीक्षा दी और प्रथम श्रेणी (डीवीज़न) में पास हुए, फिर १८६२ में बी. ए. और १८६५ में एम. ए. और १८६६ में एल. एल. बी. परीक्षा पास की, और प्रत्येक परीक्षा में बम्बई प्रान्त के विद्यार्थियों में प्रथम रहे।

इसीलिये वह आजतक "ग्रैजुएटों के राजा" कहलाते थे। सन् १८६५ में बम्बई विश्वविद्यालय के फ़ेलो नीयत हुए और एक वर्ष पीछे शिक्षाविभाग में २००) रुपए मासिक वेतन पर महाराष्ट्री ट्रान्सलेटर नियत हुए, तथा सन् १८६८ में एलफ़िन्स्टन कालेज में अंगरेज़ी भाषा के प्रोफ़ेसर (शिक्षक) नियत किए गए। इनकी शिक्षा प्रदान करने की रीति ऐसी मनोहर और इनके भाव ऐसे गम्भीर होते थे की कभी कभी दूसरे अंगरेज़ शिक्षक भी इनके व्याख्यान सुनने के लिये आते, यहां लों कि शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर मिस्टर फील्ड भी एक दिवस अपने अन्यान्य अंगरेज़ मित्रों के साथ उपस्थित थे। सर अलेग्ज़ेन्डर ग्रैण्ट ने भारतवर्ष से बिदा होते समय कहा था कि बम्बई कालेज को रानाडे ऐसे विलक्षण और विशालबुद्धि विद्यार्थी के लिये अभिमान करना चाहिए। कहते हैं कि सर अलेग्ज़ेन्डर को रानाडे के इतिहास के प्रश्नों के उत्तर ऐसे रुचे थे कि उन्होंने अपने विश्वविद्यालय आक्सफ़ोर्ड में, कि जहां उन्होंने शिक्षा पाई थी, इनके उत्तर भेज दिए और यह लिखा कि भारतीय विद्यार्थी की अद्भुत बुद्धि का यह एक आदर्श है। सन् १८७२ तक यह कालेज के प्रोफ़ेसर रहे। सन् ७३ में ८००) रु० मासिक पर पूना के सबजज हुए। फिर क्रमशः पूना, रत्नगिरि, कोल्हापूर बम्बई इत्यादि नगरों में जज की पदवी पर आरुढ़ रहे। जब यह बम्बई के प्रेसिन्डेन्सी मेजिस्ट्रेट थे ते एक अंग्रेज़ का मुकद्दमा इनके न्यायालय में आया। रानाडे महाशय ने उस अंग्रेज़ को पूर्ण विचार के पश्चात् दण्ड दिया और कारागार में ले जाने की आज्ञा दी। इस समय बहुत से अंगरेज़ी पत्रों ने आन्दोलन मचाया था, पर स्वाधीनचेता निर्द्वन्द्व और सावधान रानाडे पर इसका कुछ भी असर नहीं हुआ।

सन् १८८५ में डेकेन कालेज में Law (कानून) के लेक्चरर हुए और १८८६ में Finance (अर्थ सम्बन्धी) कमेटी में इनके सुविचारों के कारण इनको सी. आई. ई. की उपाधि मिली। सन् १८७१ में जब भारतवर्षीय सरकार के आय व्यय पर विचार करने के लिये विलायत में एक कमेटी नियत करने की बात चीत थी, तो सरकार की यह इच्छा हुई कि रानाडे महाशय को विलायत भेजें; पर वह कमेटी ही नियत न हुई। लार्ड हेरिस और लार्ड रे के समय में वह बम्बई प्रान्त के लेजिस्लेटिव काउन्सिल के मेम्बर हुए। जब ये जज थे तो कई एक बड़े ही जटिल मुकद्दमें आए और उनपर उनका फ़ैसला (न्याय) ऐसा उत्तम और विचारयुक्त हुआ कि बम्बई हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस सर माईकेल वेस्ट्राप ने यह कहा था कि राव बहादुर रानाडे इस योग्य हैं कि हाईकोर्ट में अंगरेज़ जजों के साथ बैठें। विख्यात सर टी० माधव राव ने रानाडे को इसी समय २०००) रु० मासिक वेतन पर बड़ोदा का चीफ़ जस्टिस और महाराज होलकर ने ३५००) रु० पर अपना दीवान बनाना चाहा, पर इन्होंने दोनों पदों को अस्वीकार कर अंग्रेज़ी ही सेवा करनी पसन्द की।

२३ नवम्बर सन् १८८३ को श्रीमान् जस्टिस काशीनाथ त्रिम्बक तैलङ्ग के मरने पर रानाडे हाईकोर्ट के जज नियत हुए और यह चुनाव सबको रुचिकर था। इन्होंने सात वर्ष तक हाईकोर्ट की जज्जी की। एक तो जज्जी का काम ही बड़े परिश्रम का है, और फिर इनका सरकारी काम से अवकाश पाकर ग्रन्थों के पढ़ने और लिखने और सभा समाजों में जाने और व्याख्यान देने में जो समय जाता था वह चाहे उनके मस्तिष्क-वृद्धि और देश के लिये कैसा ही उपकारी हुआ हो, पर उसने उनके स्वास्थ को बहुत ही हानि पहुंचाई। नेत्र इनके निर्बल हो गए थे। वे स्वयं पढ़ नहीं सकते थे, पर विद्यार्थियों से पुस्तक, समाचारपत्र पढ़वा कर सुना करते थे। उत्साह, साहस और परिश्रम में तनिक भी न्यूनता न हुई, स्वास्थ चाहे कैसा ही हो जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने ६ जनवरी सन् १९०१ से छ मास की छुट्टी ली और यह विचार करते थे कि इस समय को पूना, महाबालेश्वर इत्यादि स्थानों

करने में सुगमता होगी, उतनी हो भारत की उन्नति में शीघ्रता होगी। अतएव विश्वविद्यालयों के वर्तमान नियमों में संशोधन करानेवाला मनुष्य हमारे धन्यवाद का पात्र है। रानाडे बम्बई विश्वविद्यालय की सीनेट में नीयमानुसार ठीक समय पर बराबर जाते थे, परन्तु बहुतेरे मेम्बरों की तरह सम्मान बढ़ाने की चाह से नहीं वरञ्च देश की सेवा करने के लिये। उनका एक प्रस्ताव यह था कि जो विद्यार्थी बी. ए. की परीक्षा में किसी विषय में फेल हो जावे तो दूसरे वर्ष उसी विषय में ही केवल वह परीक्षा देवे, परन्तु यह प्रस्ताव स्वीकृत न हुआ।

कांग्रेस के साथ ही साथ इनकी इच्छा थी कि (Industrial Conference) शिल्प-समिति भी हुआ करे और कई वर्ष लों यह हुई भी। कांग्रेस में सरकारी कर्म्मचारी कुछ कार्य्य नहीं कर सकते हैं, सोशल कान्फरेन्स के उद्देश्यों से सब सहमत नहीं हैं, अतएव एक ऐसी महासभा का होना बड़ा लाभदायक है कि जिसमें सरकारी कर्म्मचारी और भिन्न-धर्मावलम्बी एकत्र हो सकें।

पूना में महाराज शिवाजी की समाधि पर एक मेला लगता है। यह मेला इन्हींका चलाया हुआ है। बसन्तऋतु में व्याख्यान होते हैं। इसके भी अधिष्ठाता येही थे। पूना सार्वजनिक सभा, ज्ञानसमाज, डेकेन सभा, डेकेन क्लब, हीराबाग ट्रस्ट, नेटिव जेनरल पुस्तकालय, रे आर्ट प्रदर्शनी और म्यूज़ियम (अजायब घर) इत्यादि इन्हींके उत्साह का परिणाम था। महाराष्ट्र विलेज एजूकेसन सोसाईटी द्वारा ग्रामीण लोगों और विशेष कर नीच जाति के बालकों को शिक्षा प्रदान करने का प्रयत्न, आर्य्यन कालेज और उसकी यूनीयन सभा, हिन्दू विडोज़ होम (विधवा-आश्रम) इत्यादि पूना में इनके कीर्तिस्तम्भ हैं और वे जब लों सद्विचार और उन्नति की प्रेरणा भारतवासियों के चित्त में होगी, स्थायी रहेंगे।

रानाडे के बनाए ग्रन्थ और व्याख्यान

रानाडे के बनाए प्रायः जितने ग्रन्थ हैं वे सब किसी न किसी सभा में पढ़े गए थे। इनके बनाए तीन ग्रन्थों ने अपने समय में पठितसमाज में कुछ कोलाहल सा मचा दिया था। वे ये हैं—महाराष्ट्र इतिहास, इण्डियन इकैानोमिक्स और पेशवाओं की दिनचर्य्या की भूमिका। इनके अतिरिक्त सरकार के अनुरोध से इन्होंने Revenue Manual (मालगुज़ारी की नियमावली) लिखी थी जो सबको पसन्द आई और उसमें बताए हुए नियमानुसार सरकारी कार्य आरम्भ हुआ।

व्याख्यान देने के भी कई ढङ्ग हैं; कोई तो उमङ्ग में आकर हाथ पटक देते हैं, अपने विरोधियों को जो कुछ चाहते हैं कह बैठते हैं। रानाडे महाशय के व्याख्यानों में ये सब दोष न थे। शान्तिभाव से खड़े होकर वे अपने सिद्धान्तों को प्रगट करते थे, शब्द सब तुले हुए और माधुर्य्य से पूर्ण होते थे। इनके व्याख्यानों के विषय ऐसे होते थे—"मृत्यु क्या है", ईश्वरनिरुपण", "लोहे का व्यापार", "मनुष्य गणना से शिक्षा" इत्यादि। विषय ऐसे गूढ़, भिन्न और विस्तृत होने पर भी उनके विरोधी भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि इनकी सम्मति पूर्ण अनुसन्धान के पश्चात् निश्चित की हुई प्रतीत होती है। इस बात को पायोनीयर पत्र ने भी स्वीकार किया है कि इनकी अंगरेज़ी अत्यन्त ही मधुर और शुद्ध होती थी।

मातृभाषा से प्रेम और उसकी सेवा

हम लिख चुके हैं कि इनकी शिक्षा का आरम्भ मातृभाषा में हुआ और इसी कारण मातृभाषा के प्रेम का अंकुर उसी समय से इनके चित्त में जम गया था। कहते हैं कि बी. ए. और एम. ए. इत्यादि परीक्षा समाप्त होने पर और उनके परिणाम प्रकाश होने के बीच का समय वे सदैव महाराष्ट्री ग्रन्थों के अवलोकन में व्यतीत करते थे। पूना में बसन्त

न्तु में और अनेकानेक अवसरों पर महाराष्ट्री ही भाषा में व्याख्यान दिया करते थे। कितने ही ग्रन्थ अपनी मातृभाषा में इन्होंने लिख डाले थे। ये तो उनका मातृभाषा से प्रेम हुआ, परन्तु मातृभाषा की एक सेवा उन्होंने ऐसी की कि जो सदैव उनकी कीर्ति का स्मारक रहेगी और जिससे अन्य प्रान्तों के देशहितैषियों को शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। सन् १८७० से पूर्व बम्बई विश्वविद्यालय में बी. ए., एम. ए. के विद्यार्थी संस्कृत, फारसी, महाराष्ट्री, गुजराती और कनाड़ी भाषा में परीक्षा दे सकते थे और भारतवर्ष के कतिपय विख्यात सज्जन रानाडे की भांति महाराष्ट्री अथवा गुजराती लेकर बी. ए. पास हुए थे। परन्तु पीछे सन् १८७० में देशी भाषा युनिवर्सिटी परीक्षाओं से निकाल दी गई। यद्यपि सर रेमन्ड वेस्ट और डाक्टर विलसन ऐसे महानुभावों ने देशीभाषाओं का पक्ष लिया था, पर दो तीन सभासदों के अधिक वोट से भाषा के विरोधियों की जय हुई। सन् १८८८ में पुनः इस विषय पर विचार हुआ कि प्रत्येक बी. ए. के विद्यार्थी को निज भाषा का ज्ञान होना चाहिए और एक प्रबन्ध देशीय भाषा में लिखना परीक्षाओं में आवश्यक होना चाहिए। सिनेट ने यह प्रस्ताव फिर अस्वीकार किया और सन् १८९३ में पुनः यह युनिवर्सिटी के सन्मुख उपस्थित किया गया और पुनः इसकी पराजय हुई। पर रानाडे महाशय ने सन् १९०० में पुनः इसपर विवाद छेड़ा और विचारशील पुरुषों की सम्मति अपनी ओर करली। तब युनिवर्सिटी ने इस प्रस्ताव को एक सबकमेटी में विचारार्थ उपस्थित किया। विरोधी लोग यह कहते थे कि देशीभाषा में उपयोगी साहित्य का अभाव है और जो कुछ है भी वह पद्य में है, गद्य के ग्रन्थ बहुत कम हैं। रानाडे महाशय ने एक बड़े सारगर्भित व्याख्यान में यह कहा कि जिस दोष के कारण मरहट्टी और गुजराती युनिवर्सिटी में जारी नहीं की जाती वह दोष संस्कृत साहित्य में भी वर्तमान है, अर्थात् गद्य के ग्रन्थों की न्यूनता। इसके साथ ही इन्होंने यह भी सिद्ध किया कि देशी भाषा का साहित्य भी ऐसा ही उपयोगी है कि जैसा संस्कृत का। उन्होंने ऐसी पुस्तकों की सुची दी कि जो एम. ए. तक पढ़ाई जासकें। विरोधियों का मुखमर्द्दन हुआ और रानाडे की जय हुई, पर काल ने उनको इसका सुख न भोगने दिया। अपने प्रयत्न में सफलीभूत होने से एक प्रकार की सन्तोषरूपी प्रसन्नता होती है। यद्यपि रानाडे ३० वर्ष लों इसीपर लड़ते रहे, पर उस अन्तिम सुख से वे वञ्चित रह गए। ता० २९ जनवरी को सिनेट में यह प्रस्ताव अन्तिम विचार के लिये पेश हुआ जिसमें रानाडे महाशय के उत्तराधिकारी (Successor) मिस्टर जस्टिस नारायण गोविन्द चन्द्रवरकर ने एक व्याख्यान में देशीभाषाओं की कालेजों के उच्च श्रेणी में पढ़ाने की आवश्यकता दिखाई। यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया। केवल तीन ही सभासदों ने विरोध किया। पाठकवृन्द! विशेषकर पश्चिमोत्तरदेश निवासी सज्जन! क्या आपके चित्त में यह इच्छा उत्पन्न नहीं होती कि इस प्रान्त में भी एक रानाडे ऐसे सज्जन उत्पन्न हों और अंग्रेज़ी शिक्षा पानेवालों की रुचि हिन्दी भाषा और साहित्य की ओर आकर्षित करें। जब लों कालेजों में भाषा की शिक्षा देने का प्रबन्ध, जैसा बम्बई में हुआ है, न होगा, अंग्रेज़ी शिक्षित मण्डली में हिन्दी साहित्य के प्रेमी बिरले ही मिलेंगे। वर्तमान लेफटिनेण्ट गवर्नर की कृपा से हिन्दी पुस्तकों का अनुसन्धान काशी नागरीप्रचारिणीसभा द्वारा हो रहा है और इसकी पूर्ण आशा है कि बहुत से परमोपयोगी, ग्रन्थ जो अब लों दबे पड़े थे, प्रकाशित किए जांयगे। अब एक ऐसे महानुभाव की आवश्यकता है जो युनिवर्सिटी में इस विषय पर विवाद छेड़ें कि क्यों देशी भाषा भी संस्कृत के नांई एम. ए. तक न पढ़ाई जाय, जब कि उचित ग्रन्थ प्राप्त होते हैं।

स्वभाव और चरित्र

हम लिख चुके हैं कि रानाडे महाशय समाजसंशोधक थे। पर तनिक विचार कीजिए कि जो

पुरुष प्रचलित व्यवहारों में परिवर्तन करे, वह ऐसा सर्वमान्य और सर्वप्रिय कैसे हो सकता है कि उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर बाज़ार तक बन्द हो जांय। तिलक ऐसे सनातन धर्म्मावलम्बी सर्वसाधारण के सन्मुख फूट फूट कर रोएं। इसका एकमात्र कारण उनका सद्स्वभाव और सच्चरित्र था। उन्होंने अपने जीवन में किसी-को कटु बचन नहीं कहा। वह कहा करते थे कि लोगों को यह कहने से क्या लाभ कि तुम बुरे हो, किसी गौं के नहीं, और तुम से किसी प्रकार के सत्कार्य्य की आशा नहीं; यदि मनुष्यों को इस संसार का यथार्थ आशय समझना है कि जिसमें वे रहते हैं, तो उनमें इस बात का ज्ञान उत्पन्न करो कि जिससे वे अपनी गुप्त मर्य्यादा का प्रमाण पा सकें। लोगों को आश्चर्य्य होता है कि रानाडे महाशय "प्रार्थनासमाज" के सभासद होने पर भी कभी कभी मन्दिरों में पुराणों की कथा सुनने अथवा उनके रूपकयुक्त गूढ़ मर्मों को समझने चले जाते और कभी आर्य्यसमाज में जाकर व्याख्यान दे आते। स्वामी दयानन्द के बम्बई जाने पर उन्होंने स्वामी जी का बड़ा सत्कार किया था और स्वामी जी ने भी उनको अन्तरङ्ग सभा का सभासद नियत किया था। उनका अन्तिम संस्कार (दाहक्रिया) सनातन धर्म्मानुसार किया गया। किसी प्रकार का परिवर्त्तन लोगों के चित्त को दुखाकर करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। समाज-संशोधकों के कर्तव्यों को उन्होंने एक व्याख्यान में यों दिखलाया था—"संशोधन करनेहारों को कोरी स्लेट पर लिखना आरम्भ नहीं करना है। बहुधा उनका कार्य्य यही है कि अर्द्ध लिखित वाक्य को पूर्ण करें। वे जो कुछ उत्पन्न किया चाहते हों अपने अभिलषित स्थान (goal) पर तभी पहुंच सकते हैं, जब कि वह जो कुछ प्राचीन काल में सत्य ठहराया गया है, उसे सत्य मानलें और बहाव में कभी यहां और कभी वहां धीमा सा घुमाव दे दें, न कि उसमें बांध बांधें, अथवा उसको किसी नूतन श्रोत की ओर बरबस ले जांय।

उनको पुस्तकावलोकन की बड़ी चाह थी। उपनिषद् उनके प्रिय ग्रन्थ थे। वेदान्त के गूढ़ विषयों को वे अधिक मनन किया करते थे। यद्यपि उनके व्याख्यान लम्बे होते थे और वक्ता भी अच्छे थे, पर साधारणतः वह बहुत कम बोलते थे। दस पन्द्रह मनुष्यों में बैठकर हंसी ठिठोली करना अथवा व्यर्थ विषयों पर बात चीत करना उनको आता ही न था। चाल उनकी ऐसी सादी थी कि एक समय डाक्तर निशिकान्त चटरजी ने, जो कई वर्ष लों रूस की राजधानी सेन्टपीटर्स्‌बर्ग में प्रधान अध्यापक रह चुके हैं, उनको गृहपर कन्टोप और मिरजई पहिने देखकर कहा था कि यदि कोई अंगरेज़ इनको इस समय देखले तो नाटक का विदूषक समझेगा। अभिमान लेशमात्र भी उनको न था। २०० विद्यार्थी उनकी सहायता से विद्याध्ययन करते थे। उनका बहुत सा धन ऐसेही सुकार्य्य में व्यय होता था। यदि उनकी मृत्यु ऐसी अचानचक न होती तो वह कोई स्थाई प्रवन्ध बसीयतनामे द्वारा कर जाते जिससे देश का कुछ उपकार होता। पर भारतवर्ष में कई एक विख्यात देशहितैषियों के कुछ न लिख जाने से देश को बहुत हानि हुई है। मनमोहन घोष ने "My will, My will" कहते हुए प्राण त्यागे थे। यह बड़े राजभक्त थे। ईश्वर को भी यही स्वीकार था कि यह अन्त समय तक राजभक्त बने रहें। महारानी राजराजेश्वरी की मृत्यु के पूर्व इनका शरीर छूटा। अपनी प्रिय महारानी की मृत्यु का समाचार सुनना भी इनको प्रिय न था।

मन्द्राज में दीवान बहादुर रघुनाथ राव के अनुरोध से इनका स्मारक बनाने की बात चीत हो रही है। मन्द्राजी सज्जन अवश्य अपने उद्देश्य को कर डालेंगे, पर खेद की बात है कि बम्बई वाले अब लों कुछ ठीक नहीं कर रहे हैं। गत कानवोकेशन (Convocation) में लार्ड नार्थकोट ने रानाडे की बड़ी प्रशंसा की। इससे आशा है कि बम्बई वाले यदि यथार्थ में सो गए हों, या महारानी के स्मारक के प्रस्ताव में अत्यन्त लीन हों जो बहुत ही आवश्यक



चित्र १



चित्र २



चित्र ३



चित्र ४

और उत्तम विचार है, तो इस ओर भी ध्यान देंगे और लार्ड नार्थकोट का उनकी प्रशंसा करना मानो इस बात को याद दिलाना है कि हे बम्बई-निवासी! अपने विश्वविद्यालय में कोई वृत्ति रानाडे के नाम पर खोलो। जिस रानाडे की यह अभिलाषा थी कि ताता की शिल्प-पाठशाला के लिये सारे भारतवर्ष में छुट्टी लेकर भीख मांगे उनके लिये बम्बई निवासियों को चन्दा देने में क्या आगा पीछा हो सकता है।

अजण्टा की गुफाओं की चित्रावली

अजण्टा कहां है यह भी बहुत से लोग नहीं जानते होंगे, और वहां की गुफाओं में चित्र कहां से आए इसके लिये भी बहुत से लोगों ने चिन्ता नहीं की होगी। ग्रेट इण्डियन पेनिनसुलर रेलवे पर एक पचोरा नाम स्टेशन है। वहां से तीस मील की दूरी पर फर्दापुर नाम का एक गांव बसा है। अजण्टा की गुफाएं फर्दापुर से साढ़े तीन मील पर हैं। गुफाओं से अजण्टा नाम का गांव ४ मील है। ये गुफाएं एक छोटी सी पहाड़ी की घाटी में बनी हुई हैं और उनके भीतर जो चित्र लिखे हैं उन्हींका वर्णन आज आपको भेट किया जाता है।

पूर्व काल में बौद्ध लोग अपने पवित्र जीवन को सांसारिक झगड़ों से अलग और एकान्त में व्यतीत करने के लिये निराले और निर्जन गुफा कन्दरें खोज खोज कर उन्हींमें वास किया करते थे। ये गुफाएं प्रायः जल और दूसरे आवश्यकीय सामग्रियों के समीप हुआ करती थीं और कभी कभी तो वे पर्वतों में बनी हुई मिल जाती थीं और कभी कभी मनुष्य भी उन्हें खोद कर वा तोड़ फोड़ कर बड़ी बड़ी और अपने निवास के उपयोगी बना लेते थे।

भारतवर्ष की बहुतेरी ऐसी गुफाओं के आस पास की प्राकृतिक शोभा बड़ी अपूर्व है। परन्तु स्वाभाविक शोभा और एकान्तपन में अजण्टा के साथ और किसीकी भी तुलना नहीं हो सकती। स्वाभाविक शोभा से बौद्ध लोगों के धर्म्मजीवन का बड़ा गहरा सम्बन्ध था। जो लोग ध्यानपरायण हो उन्नत जीवन लाभ के प्रयासी होते थे, उनके लिये तो जलप्रवाह की उच्च वा मृदु ध्वनि, मन्द मन्द पवन के स्पर्श से वृक्ष-पत्रों का सर सर शब्द, आकाश-मार्ग में मेघमालाओं का इधर उधर संचरण, वृक्ष-लतादिकों का रहस्यमय जन्म और उनकी वृद्धि, अरण्यचारी जीवसमूहों का विचित्र जीवन, ये सब शाक्यसिंह वर्णित महाधर्म्म के स्तोत्र पाठ के समान प्रतीत होते थे।

पत्थर काट कर जो मन्दिर वा गृह बनाए जाते हैं वेही सबसे अधिक काल स्थायी और रहने के उपयोगी होते हैं। परन्तु जान पड़ता है कि बौद्धलोग केवल स्थायित्व ही के लिये खोद कर गुफा नहीं बनाते थे; बुद्धदेव और उनके चेले देशाटन के समय स्वाभाविक गुफाओं में जाकर ठहरते थे, इसी विचार से बौद्धलोग गुफा बनाने में इतना आग्रह और उत्साह दिखाते थे। इस प्रकार के चैत्य, विहार वा संघाराम का वर्णन यहां पर निष्प्रयोजन है। भिक्षुकों के लिये वर्षा-ऋतु में देशाटन निषिद्ध था। वे लोग पहिले इन गुफाओं में बर्सात काटने के लिये ठहरते थे अथवा गरमियों के दिनों में ठण्ढी जगहों का सुख उठाने के लिये—यह निश्चय करना कठिन है। अजण्टा की गुफाएं पहिले मनुष्यों के लिये पूर्णतया उपयोगी थीं। उनको छत्तों से जल नहीं चूता था। बर्सात में बाढ़ का जल गुफाओं के बहुत नीचे रहता है। अब भी जिस समय कि कठिन गरमियों के दिनों में फर्दापुर में १०६ डिग्री की गरमी होती है, उस समय इन गुफाओं के भीतर बड़ी सुखदायक ठण्ढक बनी रहती है। वर्षाऋतु में जब चारों ओर हरियाली छा जाती है और वृक्ष-लतादिक, पत्र पुष्पों से सुशोभित होते हैं, उस समय इस पर्वत की शोभा देखते ही बन आती है।

गुफाओं के पासही एक जलप्रपात है। वह एक सीढ़ी पर से दूसरी पर कूदता हुआ इसी भांति सात स्वाभाविक सीढ़ियों और उनके नीचेवाले जलाशयों को लांघता हुआ बह रहा है। इसलिये उसका नाम सातकुण्ड है। सबसे नीचे वाले कुण्ड में बारहों महीने जल रहता है। सम्भव है कि गुहावासी यतिओं ने इसी जलाशय के निकट रहने ही से यहां पर गुफाएं बनाई हों। अब वहां कोई नहीं रहता और वे जनशून्य हो खाली पड़ी हैं। केवल मकरसंक्रान्ति के दिन वहां एक धूमधाम का मेला लगता है और लोग कुण्ड के पवित्र जल में स्नान कर आते हैं।

गुफा से आपलोग यह न समझें कि वे छोटी छोटी कन्दराएं हैं। एक एक गुफा एक एक महल के समान है। ऐसी २९ गुफाएं अजण्टा में हैं। दृष्टान्त स्वरूप यहां पर कहदेते हैं कि चौथी गुफा के द्वार से भीतरी शेष भीत तक १०० हाथ की चौड़ाई है। दो एक गुफा दोखनी भी हैं। गुफाओं की भीतों, द्वार, खंभों और छत्तों में भांति भांति के चित्र, मूर्त्ति, फूल, पत्तियां, इत्यादि चित्रित और खुदे हुए हैं। बहुत सी गुफाओं की भीतों में खुदे हुए शिलालेख भी पाए जाते हैं। जान पड़ता है कि ईसवी दूसरी से सातवीं वा आठवीं शताब्दि के भीतर ये गुफाएं निर्म्मित हुई होंगी। कहीं कहीं उजाला तक नहीं पहुंचता, इससे जान पड़ता है कि वहां के चित्र कृत्रिम प्रकाश की सहायता ही से चित्रित हुए थे। यहां लोग दिया जलाकर पूजा अर्च्चना करते होंगे। भारतवर्ष की गरमी प्रसिद्ध है, तिसपर ऐसे स्थान में जिन लोगों ने ये चित्र लिखे थे, उनके धीरज और निपुणता पर विचार कीजिए। इस लेख में हम खोदे हुए चित्रों का वर्णन नहीं कर सकते, लिखे हुए चित्रों ही की कथा संक्षेप में लिखते हैं। इस समय इन चित्रों की दशा बहुत बुरी हो रही है, कोई भी सम्पूर्ण नहीं है। कहीं चूना गिर गया है, कहीं रङ्ग फीका पड़ गया है, और कहीं कहीं जहां तक मनुष्य के हाथ पहुंचे हैं, किसी किसी दुष्ट ने लकड़ी आदि से चित्रों को छील कर बिगाड़ दिया है और चमगीदड़ों और मधुमक्खियों के वहां अपना रामराज्य स्थापित करने तथा छत्त फटकर बरसात के जल गिरने से भी अनेक चित्रों की श्री भ्रष्ट हो गई है। इन्हीं चित्रों में से बहुतों की ठीक ठीक नकल नाना प्रकार के रङ्गों में गवर्नमेंन्ट ने (Canvas पर) करवाई थी। उन्होंसे फिर कई चित्र रङ्गीन और बहुत से काली स्याही में पुस्तकाकार छपे हैं। हमने उन्हीं छपे हुए चित्रों में से कई एक का फोटो लेकर उनसे यह चौथी नकल यहां पर प्रकाशित की है। इसलिये पाठक समझ सकते हैं कि ये गुफा के आदि चित्रों के आभासमात्र हैं, ठीक ठीक उनका अनुकरण करना असम्भव है। बड़े बड़े युरोपीय चित्रकारों ने इनकी प्रशंसा की है और कहा है कि बौद्ध चित्रकार चित्रविद्या में विशेष कुशल थे।

बौद्धों की बात स्मरण करने पर केवल उन लोगों की मृदु और शान्त कर्म्मविमुखता ही पर ध्यान दौड़ता है। परन्तु अजण्टा की गुहाचित्रावली से उनके अनेक गुणों का परिचय भी हमें मिलता है। यदि चित्रों की सुन्दरता को छोड़ दें तो भी उनसे हमें अनेक शिक्षाएं प्राप्त होती हैं। इन चित्रों के देखने से बौद्धधर्म के विकाश की आलोचना हम कर सकते हैं। बहुत से चित्रों में बुद्ध मानवाराध्य देवता के सिंहासन पर प्रतिष्ठित हैं। परन्तु ऐसे चित्र भी बहुत हैं जहां और दस मनुष्यों में मिलकर वे संसार में विचरण करते देख पड़ते हैं। उनका जन्म, बाललीला, विद्याशिक्षा, गृहत्याग, मार (बौद्धपुराण में वर्णित शयतान) द्वारा परीक्षा, नानास्थानों में नानाप्रकार से धर्म्मप्रचार, निर्वाणलाभ, इत्यादि उनके जीवन की अनेक घटनाएं और उनके कार्य्य इन चित्रों से अंकित हैं। ये चित्र कहीं तो बुद्ध के प्रचलित जीवनचरित के वर्णित वृत्तान्तों का समर्थन करते हैं, कहीं उन वृत्तान्तों के दुर्बोध अंश को सुगम बनाते हैं और कहीं पर जीवनचरित में जो घटना नहीं वर्णित हैं उनका



चित्र ५



चित्र ६

National Library,
Calcutta-27



चित्र ७

ज्ञान हमको दिलाते हैं। बौद्धमत के अनुसार जीवात्मा जन्म जन्मान्तर में नाना भांति के जीव-देहों को धारण करता है। बुद्धदेव ने भी ऐसा ही किया था। चित्रों में उनके विवरण भी मिलते हैं।

केवल यही नहीं। पर राजा लोगों का जन्म, सिंहासनारोहण और उनकी मृत्यु की तिथि, युद्धादिकों का वृत्तान्त, भिन्न भिन्न राजवंशों का उन्नत होना और फिर गिरना—ये सब इतिहास के अस्थिपञ्जर भी उनमें विद्यमान हैं। इतिहास को सजीव करने के लिये इन्हें छोड़ और बातों का भी प्रयोजन उनसे निकलता है। और वे बातें ऐसी होनी चाहिए कि उनकी सहायता से भूतकाल को कल्पना के द्वारा मानसिक नेत्रों के सामने उपस्थित कर सकें। पूर्वकाल में स्त्री पुरुष क्या खाते थे, कैसे वस्त्र आभूषण पहिरते थे, किस प्रकार से प्रेमालाप, झगड़ा, रसोई, इत्यादि करते थे, और लेन देन, आखेट, नाच और गाना बजाना [चित्र २] उनका कैसे होता था, वे क्या क्या वस्तुएं बना सकते थे, शिल्प में उनकी उन्नति कहां तक पहुंची थी, उनका सामाजिक और धर्म्मसम्बन्धी विश्वास कैसा था, युद्धविग्रह और वाणिज्य किस प्रकार से होते थे, अस्त्र शस्त्र और गृहों की सजावट कैसी थी, विदेश से उनका सम्बन्ध कहां तक था, इत्यादि विषय यदि जान सकें तो हम लोगों को अपने पुराने दिनों का ज्ञान स्पष्ट हो सकता है। अजण्टा की गुहा-चित्रावली की सहायता से ऐसे अनेक विषयों का ज्ञान हमको प्राप्त होता है। यक्ष रक्ष गन्धर्वादिकों के विषय में उस समय लोगों के विचार कैसे थे यह भी हमें इनसे जान पड़ता है। यहां पर एक गन्धर्वों के जोड़े का चित्र दिया जाता है। [चित्र ४] गन्धर्वों का मुख मनुष्यों की भांति और शरीर पक्षियों का सा था। किन्नर लोगों की आकृति मनुष्यों के समान परन्तु मुख घोड़ों का सा था। राक्षस लोग शून्यमार्ग में विचरण कर सकते थे। उनके मुख के दोनों ओर से सूअर की भांति दो दांत निकले रहते थे [चित्र १–राक्षसी]। देखिए एक पुजारी कैसी एकाग्रता से हाथ जोड़ कर आराधना कर रहा है [चित्र ३] और उसका चित्र कैसा सजीव खींचा गया है। फ़र्गुसन साहब ने कहा है कि "अजण्टा के चित्र सराहने योग्य हैं; उनको देख हमें ज्ञान हुआ कि भारतवासी यद्यपि आज कल के युरोपीय चित्रकरों से बढ़कर चित्र खींचना नहीं जानते हैं, तो भी एक समय ऐसा था जब वे इस विद्या में बड़े पारदर्शी थे, और अपने समय के युरोपीय कारीगरों से कहीं बढ़ चढ़ कर थे।"

युरोपीय दृष्टि में इन चित्रों में त्रुटियां भी दिखाई गई हैं। हमारे देश में बड़ी बड़ी आंखों का आदर चिरकाल से है, परन्तु आयत-लोचनाओं के नेत्र वास्तव में ऐसे बड़े नहीं होते थे कि वे कान तक लम्बे हों। यह दोष इन चित्रों में अवश्य है। इसी प्रकार यद्यपि पीनपयोधर और गुरु नितम्ब की प्रशंसा सब कवियों ने की है, तो भी इन चित्रों में प्रायः वे असम्भव रूप से चित्रित हुए हैं। परन्तु स्त्री पुरुषों के देह चित्रण में तथा अन्य विषयों में पुराने चित्रकरों ने अद्भुत निपुणता दिखाई है। अंगुलियों का भाव इतने प्रकार से दिखाया है कि वह वर्णनातीत है। विनती, क्रोध, आदर आदि भिन्न भिन्न विकारों के लिये भिन्न भिन्न भाव हैं। स्त्रियां बहुधा वस्त्रहीन चित्रित हुई हैं, अथवा उन्हें इस प्रकार के वस्त्र पहिराए हैं कि जिससे उनके देह की गठन भली भांति समझ में आ सके। दासिओं के वस्त्र चित्रित हैं, परन्तु रानी और बड़ी बड़ी कुलवतियां इतने सूक्ष्म वस्त्र पहिरे हुए हैं कि उनके शरीर पर वस्त्र दिखाई तक नहीं देते। परन्तु इससे कोई यह न विचारे कि चित्र अश्लील हैं। हिन्दू और बौद्धमात्र कमर में धोती लपेटे हुए हैं। स्त्रियां भी प्रायः ऐसे ही वेष में दिखाई देती हैं। परन्तु कोई कोई साड़ी भी पहिरे हैं। स्त्री पुरुष सब काछ लगा कर वस्त्र पहिरे हैं। राजा प्रजा सबका यही वेष है। जो जङ्गली लोग चित्रित हैं वे प्रायः भील गोंडों से मिलते जुलते हैं।

नागों की आकृति मनुष्य के समान है। परन्तु भेद इतना ही है कि गर्दन से ५ वा ७ सर्प निकल-कर सिर पर फणविस्तार किए हुए हैं। किन्तु नागिनियां एकही फण रखती थीं। जलवासिनी नागिनियों को सर्प के समान पूंछ होती थी [चित्र ६]। किसी किसी के मुख का भाव बड़ा सुन्दर है। कोई हाथ जोड़ कर उपासना कर रहा है। कोई स्त्री प्रेमास्पद के चरणों के समीप बैठ कर मानो विषम विषादमय हृदय की व्यथा सुन्दर अंगुलियाँ हिलाकर और कुछ आंखें ऊपर की ओर उठाकर कह रही है [चित्र ५]।

बौद्धलोगों का मत था कि जीव भिन्न भिन्न जन्म में भिन्न भिन्न प्राणियों का शरीर धारण करता है, इसलिये सब प्रकार के प्राणियों के चित्र भी बहुत सुन्दर बने हैं। अजण्टा के हाथी बड़े सुन्दर हैं। ऐसा सुनने में आता है कि बुद्ध की माता मायादेवी जब गर्भवती हुईं, तो उन्होंने स्वप्न में देखा था कि एक श्वेतकाय हाथी उनका पेट फाड़कर उसमें घुस रहा है। सम्भव है कि इसीलिये हाथी का इतना आदर बौद्धों में था। फिर भैंसों के चित्र



अनेक हैं। घोड़े भी बहुत हैं। उनकी गरदन और पूंछ के बाल बड़ी सुघरता से कटे हुए हैं। घोड़ों के साज नाना भांति के हैं, पर रकाब कहीं नहीं दिखाई देती। पैरों में कड़े घुङ्घरू आदि गहने देख पड़ते हैं। हरिण के चित्र भी बहुत अच्छे हैं। उस समय लोग मृगया करना बहुत चाहते थे, यहां तक कि क्या राजा क्या प्रजा, सभी हरिणों को गाड़ी पर चढ़ा उन्हें किसी मैदान में ले जाकर छोड़ देते थे और उनके पीछे पीछे शिकारी कुत्ते दौड़ाया करते थे। इसे छोड़ लोगों को हाथियों की लड़ाई, मुर्गों की लड़ाई, तथा मेढ़ों की लड़ाई भी बहुत प्रिय थी। बन्दर के चित्र बड़े विचित्र हैं। उसके आचरण में जो चञ्चलता, जो कौतुक और जो हास्यरंग भरे हुए हैं, अजण्टा के शिल्पियों ने उनका अच्छा चित्र खींचा है। बनैलों में सिंह ही प्रधान है। बाघ प्रायः है ही नहीं। जान पड़ता है कि उस समय पश्चिम भारत में सिंह बहुत थे। अब थोड़े बहुत सिंह केवल गुजरात में दिखाई देते हैं। ऊंट का केवल एक ही चित्र है। हंस, मोर, चील, गृद्ध, कौआ, कबूतर, तोता, उल्लू आदि के चित्र भी अनेक हैं। संपेरे सांप खेला रहे हैं, और कहीं सांप पकड़ रहे हैं। सांड़ों के कान लम्बाई में सम्पूर्ण चिरे हुए देख पड़ते हैं। अस्त्र शस्त्रों में ढाल, तलवार, बर्छी, परशु, बज्र, तुणीर, चक्र, गदा, धनुष, भाले आदि हैं। नेपाली खुखरी की भांति बहुत सी तलवारों के टेढ़े भाग पर धार चढ़ी हुई है। लम्बी तलवारें भी हैं। झंडा युद्ध के धूम धाम का एक प्रधान अंग था। छाता बांस का बनता था। तीन प्रकार के पंखे होते थे, वे तीनों आजकल देख पड़ते हैं। वाद्ययन्त्रों में तूरी, सारंगी नहीं देख पड़तीं। शंख, वंशी, बीणा, इकतारा, ढोल, मन्दिरा, खँजरी आदि देख पड़ते हैं।

वस्त्र का कुछ वर्णन पहिले कर चुके हैं। बुद्ध-देव के सब चित्रों में उनके बांए कन्धे पर चादर



चित्र ८

देख पड़ती है। उपासक सब धोती पहिरे हैं। एक चित्र में राजा दूसरे पुलिकेशी की सभा में पारस के राजा दूसरे खुसरो का दूत आया है। यहां यह पुलिकेशी सातवीं शताब्दि में महाराष्ट्र देश पर राज्य करता था। पुलिकेशी सभा में बैठे हैं। सभी छोटी धोती पहिरे हैं, जो घुटनों के नीचे तक नहीं पहुंची है, और सारा शरीर खुला हुआ है। सिंहासन का पृष्ठभाग मणि-माणिक्य से शोभित है। महल के भीतर भी राजा उस छोटी धोती को छोड़ और कुछ नहीं पहिरते थे। परन्तु नौकरों की देह पर फतुई रहती थी। स्त्रियां चोली पहिरती थीं। कहीं कहीं चोली तक नहीं रहती थी. केवल एक फीते से दोनों स्तन खींचकर बांधे रहती थीं। राजा के मस्तक पर रत्न-निर्म्मित मुकुट रहता था। श्रमण अर्थात् भिखारी और सेना सब सिरखुले रहते थे। परदेशी लोगों के सिर पर टोप और टोपियाँ भी चित्रित हैं। आभूषण स्त्री पुरुष दोनों बहुतायत से पहिरते थे।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्राचीन चित्र-विद्या ने बहुत उन्नति पाई थी, परन्तु अब लेख विस्तार के भय से केवल और दो चित्र देकर हम लेख को समाप्त करते हैं। एक में बुद्धदेव ध्याना-वस्थित बैठे हैं, और मार अपनी सेना लेकर उन्हें डरा रहा है। कोई भ्रम दिला रहा है, कोई लोभ दिखा रहा है और कोई उनकी भोग लालसा बढ़ाने की चेष्टा में तत्पर हैं। दानव और राक्षसों की मूर्त्तियां भी नाना भांति की हैं। किसीका मुख वराह के समान है। किसीके मुख से सर्प निकल रहा है। परन्तु सब चेष्टा वृथा हुई हैं। बुद्धदेव न माया में फँसते हैं, और न प्रलोभन में पड़ते हैं। वे अटल निश्चल प्रशान्त रूप से बैठे हुए हैं। यह देख कर मार स्वयं पराजित होकर चित्र की बाईं ओर से भागा जाता है। इस चित्र में पाठक देखेंगे कि बहुत स्थानों में भीत पर के रंग उचट गए हैं और इसीसे चित्र स्पष्ट नहीं देख पड़ता। [चित्र ७]

दूसरे चित्र [चित्र ८] में एक राजा के राज्या-भिषेक के समय उसके महल के बहिर्भाग का दृश्य चित्रित है। इसमें दो स्त्रियां थाल में बालकों के कटे हुए सिर लिए किसी सन्यासी को दिखा रही हैं और सन्यासी मस्तकों की ओर देख कर अभिषेक की कोई क्रिया कर रहा है। इस चित्र का भेद नहीं जान पड़ता। सम्भव है कि अभिषेक के समय पूर्व-काल में राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान होता होगा और पशुबलि के स्थान में नरबलि दी जाती हो।

वीसलदेव रासा

सन् १९०० ई० में हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का अनुसन्धान करते करते मुझे जयपुर में वीसलदेव रासा नामक एक अति प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त हुआ। यह साढ़े आठ इञ्च लम्बे और आठ इञ्च चौड़े देशी काग़ज़ के पन्नों पर कुछ मारवाड़ी से मिलते हुए नागरी अक्षरों में लिखा हुआ है। सब मिलकर बत्तीस पृष्ठ हैं और श्लोक-संख्या लगभग ६२४ के है। देखने में यह जीर्ण और लिखा-वट इसकी प्रायः अशुद्ध है। इस समय यह ग्रन्थ विद्याप्रचारिणी जैन-सभा, जयपुर, के अधिकार में है। मैंने इस ग्रन्थ के प्रथम पृष्ठ का फोटो और समस्त ग्रन्थ की नकल लेली है। आशा है कि यह टिप्पणी सहित "नागरीप्रचारिणी-ग्रन्थमाला" में प्रकाशित हो। इस लेख द्वारा इस ग्रन्थ के विषय में जो मेरे सिद्धान्त हैं, उन्हें मैं कृतविद्य लोगों के सन्मुख उपस्थित करके आशा करता हूं कि वे लोग इसपर पूर्ण विचार करेंगे। परन्तु इस ग्रन्थ सम्बन्धी ऐतिहासिक घटनाओं पर विचार करने के पूर्व यह उचित होगा कि इसका सारांश दे दिया जाय। इसलिये पहिले उसे लिखकर तब मैं अपना मत दूंगा।

वीसलदेव रासे की कथा का सारांश

कवि नरपति नाल्ह पहिले सरस्वती की और फिर गणेश की बन्दना करके वीसलदेव रासे को

प्रारम्भ करता है। धार नामक एक नगर है ग्रैार वहां का राजा भोज परवार है, जिसके ग्रस्सी सहस्र हाथी ग्रैार पांच ग्रक्षौहिणी सेना है। भोज की राजमती नाम की बेटी ग्रत्यन्त रूपवती थी, जिसने बालपन ही में शिव की तपस्या की थी। उसके स्यानी होने पर एक दिन रानी ने राजा से उसके विवाह की चर्चा की, जिसे सुन राजा ने पांडे ग्रैार ज्योतिषी को पत्रा (पञ्चाङ्ग) लेकर बुलवाया। निदान शुभ मुहूर्त दिखलाकर राजमती के उपयुक्त वर ढूंढ़ने के लिये राजा ने चारों खंडों में पुरोहितों को भेजा। पांडे ने जैसलमेर, ग्रयोध्या ग्रैार दिल्ली (ढिल्ली) देखी, तथा मथुरा के मण्डनराय को भी देखा, पर कोई उसके मन न ग्राया। तब वीसलराय को देखा ग्रैार उसको राजमती का वर स्थिर किया; जिस पर राजा (भोज) ने सुपारी, लगन लेकर पांडे को ग्रजमेर भेजा कि चैारी पर बैठा कर वीसलदेव का पैर परवाल ग्रावे। इस ग्राज्ञा को पाकर पांडे ग्रैार प्रधान ग्रजमेर गए ग्रैार राजा की जुहार करके ग्रैार माणिक्य मोती से चैाक पूरा कर उन्होंने उसका पैर पखाला ग्रैार राजमती का सम्बन्ध उसके साथ करलिया। यह समाचार ग्रजमेर नगर में फैल गया ग्रैार घर घर मङ्गलाचार होने लगे, क्योंकि पवार जाति की कन्या के ग्राने से चहुवानों की वंश-मर्य्यादा ग्रत्यन्त बढ़गई। फिर वीसलदेव ने सोना ग्रादि धन तथा पान देकर पांडे का सत्कार किया ग्रैार उसने लैाट कर राजा भोज को सब शुभ समाचार कह सुनाए। इसके ग्रनन्तर वीसलदेव ने रूण्ड खण्ड के सब मिला कर चैारासी राजाग्रों को नेवता भेजा। नेवते में रोली चन्दन ग्रैार पके हुए पान भेजे गए। सब निमंत्रित राजाग्रों के एकत्रित होने पर गणेश का पूजन करके वीसलदेव व्याहने चला। उस समय ग्राकाश में देवतागण कैातुक देखने ग्राए ग्रैार ग्रप्सरागण राई नोन उतारने लगीं। वीसलदेव के साथ ग्राठ सहस्र नेजाधनी (बर्छीबरदार), पचास सहस्र मनुष्य पालकी पर, डेढ़ सैा हाथी ग्रैार ग्रस्सी सहस्र रथ, जिनपर ध्वजा फहराती थीं, चले। प्रयाण के समय पांच सखियां कलशों पर मोती के ग्रक्षत, कुमकुम, चन्दन ग्रैार पके पान ग्रमली समली (?) रखकर वीसलदेव की ग्रारती उतार मङ्गलाचार करने लगीं, ब्राह्मण वेद पुराण पढ़ने लगे ग्रैार स्त्रियां मङ्गलगीत गाने लगीं। उस समय राजा ने पैर में कङ्कण ग्रैार सिर पर मैार बांधा। पुरपाटन से चलकर वीसलपूर में ठहरते हुए राजा ने धार के निकट पहुंच कर डेरा डाला, जिसपर मलागिरि देश में बड़ा उत्सव हुग्रा। ग्राठ सहस्र ब्राह्मण उस उत्सव में वेदोच्चारण करते थे। दोनों ग्रोर से लड्डू, सेव, रायभोग (मोहन भोग (?), मंडोवर (?), मूंग ग्रादि से ब्राह्मण तृप्त किए जाते थे। फिर माघ पण्डित की ग्राज्ञा से बारात ग्रागे चली। खुरासानी घोड़े पर चढ़ कर वीरमदेव (वीलनदेव) राजा भोज से मिला। इसके ग्रनन्तर माघ पण्डित ने कहा हथलेवा ग्रावे। राजकुमारी के वरमाल डालने पर माश्रम (?) जोशी, देश्रम (?) व्यास, माथइ (?) बंदिजन ग्रैार कवि कालिदास वेदोच्चार करने लगे। कन्या दान होने पर ग्रत्यन्त मङ्गल मनाया गया, क्योंकि पँवार की बेटी पा चहुवान कृतकृत्य हुए। पहिली फेरी में राजा भोज ने सोने की चैारी ग्रैार मोती की माला दी, दूसरी फेरी में बहुत सा धन दिया, तीसरी फेरी में सैंभर नगर, टोंक ग्रैार मांडलगढ़ दिया, चैाथी फेरी में वीसलदेव ने चित्तौर मांगा। भोज ने कहा "संभरीराय, मुझपर कृपा करो, उज्जैन मांगो, चन्देरी मांगो, ग्रयोध्या मांगो, जो मांगो सो दूं, पर चित्तौर तो स्वर्ग के देवताग्रों को भी दुर्लभ है"। इसपर राजमती ने पिता से कहा कि ग्राप तो लङ्का के भी स्वामी हैं, चित्तौर पर इतना स्नेह क्यों करते हैं? भोज ने कहा, बेटी उसके लिये मैं बोल दे चुका हूं, उसका ग्राग्रह न कर। निदान सेना, घोड़े, सवत्सा गाय ग्रादि बहुत कुछ देकर

विवाह होगया और बीसलदेव अपनी सास से विदा हो राजमती को अपने साथ हाथी पर बैठाए अजमेर की ओर चला। मार्ग में उसने आना सागर पर स्त्रियों को पानी भरते देखा। राजप्रासाद में पहुंचने पर व्यास ने राजा को आसीस दी की तू धन्य है जो भोज की चौरी चढ़ राजमती को व्याह लाया। नरपति हाथ जोड़ कर कहता है कि तेंतीस कोटि देवताओं की कृपा से राजमती बीसलदेव के स्वयम्वर की कथा वर्णन करता हूं।

(प्रथम खण्ड समाप्त हुआ)

सँभरीराय बीसलदेव को गर्व हुआ कि मेरे बराबर कोई नहीं है, जिसपर उसकी जैसलमेरवाली रानी ने कहा कि स्वामि गर्व न करो। लङ्का के राजा रावण का प्रताप देखो। उसने भी गर्व किया था, पर फल यह हुआ कि बानरों ने लङ्का का ध्वंस कर डाला। गर्व न करो। तुम्हारे ऐसे बहुतेरे राजा हैं। एक उड़ीसा ही का राजा है कि जिसके राज्य में हीरे की खान है। यह सुनकर राजा को क्रोध हो आया। उसने पूछा कि तेरा जन्म तो हुआ है जैसलमेर में और विवाहित हो बारह वर्ष की अवस्था में तू अजमेर आई। तैने उड़ीसा के जगन्नाथ जी का वृत्तान्त कैसे जाना। अपने जन्म का वृत्तान्त कह। उसने कहा कि सुनो, मैं अपने जन्म का वृत्तान्त कहती हूं। मैं पूर्व जन्म में हरिणी रूप में बनखंड में रहती थी और निर्जला एकादशी (ज्येष्ठशुक्ला एकादशी) का व्रत किया करती थी। एक दिन एक अहेरी ने मेरे हृदय में बाण मारा जिससे मैं मरगई। इसके पीछे मेरा जन्म जगन्नाथ जी में हुआ। वहां मृत्यु के समय मेरा ध्यान जगन्नाथ जी के चरणों में लगा रहा, जिसपर भगवान ने प्रसन्न होकर कहा कि वर मांग। मैंने कहा कि पूर्व के देश से मेरा जन्म निवारण कीजिए। इसपर राजा बीसलदेव ने पूछा कि तैने पूर्व देश को क्यों छोड़ा, वहां तो पाप का प्रवेश भी नहीं है—वहां गङ्गाजी है, गया तीर्थ है, बाराणस (बनारस) है, जिसके दर्शन से पाप कटते हैं। रानी ने उत्तर दिया कि पूर्व के पुरबिया लोग पान फूल की भांति भोग करते हैं और धन के लोलुप तथा कुवाची होते हैं। गढ़ ग्वालियर के लोग अत्यन्त चतुर होते हैं और दक्षिण देश के लोग भोगी होते हैं। अब मेरा जन्म जैसलमेर में हुआ। मैंने आपसा सुन्दर रुपवाला पति पाया, जिसकी साठ रानियां हैं। यह सब सुनकर राजा ने उड़ीसा जाने और वहां के राजा पर चढ़ाई करने का विचार किया। रानी ने बहुत कुछ समझाया पर राजा ने एक न माना; वरन् पुरोहित को बुलाकर प्रस्थान का मुहूर्त पूछा। रानी ने पुरोहित से कह दिया कि एक महीने तक कोई मुहूर्त न देना। उसने भी वैसाही कह दिया कि एक महीने तक दिन अच्छा नहीं है. और सोमबार तेरस के दिन चन्द्रमा अच्छा होगा, उसी दिन जाना। फिर रानी ने बहुत पीछा किया कि मुझे भी साथ लेते चलो। राजमती ने बहुत समझाया, भावज (बीसलदेव के भाई की स्त्री) ने भी बहुत रोका; पर बीसलदेव ने किसीकी भी न सुनी, और मन्त्रियों की सम्मति से राज्य अपने भतीजे कोक (?) को सौंपा और आप धूमधाम से सेना ले दक्षिण को ओर चल पड़ा। साथ में बीरभान, उदयसिंह, अचला चहुवान, भैरव भाट, बत्सराज देवजी, अक्षयराज, अभयचन्द्र, सकतसिंह, नगराज, रायमल्ल, पलाण्यो देव, जगदेव परमार, आदि चौरासी सरदार चले। चलते समय राजा को बड़े अशकुन हुए, पर रानियों को अनेक शुभ सकुन हुए। बीसलदेव, बनास नदी पार होकर उड़ीसा पहुंचा। वहां के राजा देव ने जब यह सुना तो आगे बढ़कर वह उससे मिला और उसका बड़ा सत्कार कर उसे अपना बीर (स्वामी) माना तथा अन्य सरदारों से मिल अपना भाग्य सराहा।

(दूसरा खण्ड समाप्त हुआ)

राजा के वियोग में रानी विलाप करती है और सखिएं समझाती हैं। रानी के बारहों महीनों का दुःख पूर्णतया वर्णन किया गया है। रानी को वियोग में दस बर्ष बीत गए, ग्यारहवें वर्ष उसने

पत्र देकर पांडे के राजा के पास भेजा। पांडे के मार्ग में सात महीने लगे। निदान उड़ीसा में पहुंच कर उसने राजा के पत्र दिया और रानियों का वियोग वर्णन किया। यह सुनकर वीसलदेव ने देवराज से विदा मांगी और देवराज ने बहुत कुछ राजा के अर्पण किया। चलते समय वीसलदेव देवराज की रानी से मिलने आया। सभों ने मिलकर उसे बहुत समझाया। अन्त में रानी ने कहा कि कुछ दिन और ठहरो। देवराज की दो बहिने हैं, एक गोरी और दूसरी सांवली; उनका तुम्हारे साथ विवाह कर देंगे। वीसलदेव ने कहा कि मेरे साठ रानियां हैं, मैं विवाह नहीं कर सकता। निदान विदा हो वीसलदेव वहां से चला और मार्ग से एक आदमी को चिट्ठी देकर अजमेर भेज दिया कि जिसमें उसके आने का समाचार पहिले ही से राजप्रासाद में विदित हो जाय। समाचार के पहुंचते ही चारों ओर मङ्गलाचार होने लगे। राजा के भतीजे और अन्य सरदारों ने आगे बढ़कर उसकी अगवानी की। घर आकर राजा माता से मिले, रानियों से मिले, पर राजमती ने मान किया और राजा ने मनाया। निदान बारह वर्ष के पीछे दम्पति मिलकर आनन्दमग्न हुए।

(तीसरा खण्ड समाप्त हुआ)

राजा ने दरबार करके अपने भतीजे के यौवराज्य की पाग बंधाई, फिर पुरोहित को राजा भोज के बुलाने के लिये धार भेजा। वीसलदेव के लौट आने का समाचार पाते ही वे सानन्द चित्तौर होते धूमधाम के साथ अजमेर पहुंचे, जिस पर बड़ा आनन्द मनाया गया। राजा भोज वहां कुछ दिन तक ठहरे और लौटते समय राजमती के अपने साथ लिवाते लाए। तीन महीने पीछे वीसलदेव भी धार गए और राजमती को अजमेर ले आए, तथा वहां आकर आनन्द के साथ रहने लगे। कवि नरपति नाल्ह यह आशीर्वाद देकर कि जब तक सूर्य ऊगै, गङ्गा में जल रहे, पृथ्वी पर जगन्नाथ जी रहें, तब तक अजमेर का राज्य अविचल रहे, ग्रन्थ समाप्त करता है *।

यह इस प्राचीन विचित्र ग्रन्थ का सारांश है। ग्रन्थकर्ता का नाम नरपति नाल्ह है। अपने ग्रन्थ के बनाने का समय वह इस प्रकार लिखता है—

समत बारह सै बिहोतरां मझार
जेठ बदी नौमी, बुधबार।

गणना करने पर शक संवत् की जेठ बदी नवमी, बुधवार के पड़ती है। इससे यह ग्रन्थ ईसवी सन् १२९८ का बना मानना चाहिए। समस्त ग्रन्थ में कवि वर्तमान काल का प्रयोग करता है, जिससे अनुमान किया जा सकता है कि नरपति-नाल्ह वीसलदेव के राजत्व-काल में वर्तमान था, क्योंकि ग्रन्थ की समाप्ति में भी वह लिखता है—

जब लग महीयल उगई सूर।
जब लगि गङ्ग बहई जल पूर॥
जब लग पृथ्वी में जगन्नाथ।
जांणी राजा सिर दीधौ हाथ॥
रास पहूंतो राव को
बाजे पड़ह पखावज भेर।
कर जोड़े नरपति कहई
अबचल राज कीज्यौ अजमेर॥ ४०। ४१॥

अब "अबचल राज कीज्यौ अजमेर" का अर्थ यह लगाया जाता है कि "अजमेर का राज्य तुम अविचल (निरन्तर) करो"। यह अर्थ मान लेने पर वीसलदेव को नरपति का समकालीन मानना पड़ेगा। पर ऐसा मानने से वीसलदेव का समय पृथ्वीराज† के १० वर्ष पीछे पड़ेगा और ऐसा होना

* यह सारांश ग्रन्थ पढ़ पढ़कर लिखा गया है। कथा के रोचक बनाने का उद्योग नहीं किया गया। ग्रन्थ की भाषा प्राचीन है। ... वर्ष की डिंगल होने के कारण विशेष कठिनता अनुभव करनी पड़ी थी। इसी कारण से यहां की भाषा कुछ अन्टखलावड़ सी बोध होती है।

† शहाबुद्दीन महम्मद गोरी के साथ पृथ्वीराज का अन्तिम युद्ध सम्वत् १२४८ में हुआ था॥

कदापि सम्भव नहीं, क्योंकि चन्द के रासै। तथा अन्य सहस्र ग्रन्थों के अनुसार वीसलदेव पृथ्वीराज से पांच पीढ़ी पहिले सिद्ध होता है। सारङ्गदेव, आनाह, जयपाल, अर्णराज और सोमेश्वरराज, ये पांच नाम वीसलदेव और पृथ्वीराज के बीच में मिलते हैं। आनाह के विषय में ते। किसी प्रकार का सन्देह करना सर्वथा वृथा है, क्योंकि अजमेर में उसका बनवाया हुआ "आनासागर" अब तक उसकी स्थिति का साक्षीस्वरूप विद्यमान है। यहां पर यह कह देना आवश्यक है कि यह वह आनासागर नहीं है जहां "वीसलदेव रासे" के अनुसार वीसलदेव धार से लैाटती बेर एक दिन ठहरा था। वह एक प्राकृतिक झील है जो अना अथवा अनापर्णा देवी के नाम पर बनाई गई और जिसके तीर पर ऐसा कहा जाता है कि वान ऋषि ने प्राचीन समय में बहुत दिनों तक बास किया था।

दिल्ली में फ़िरोजशाह की लाट के नाम से एक बड़ा पत्थर का स्तम्भ फ़िरोजशाह के भग्न किले में अबलों बर्तमान है। इसपर एक लेख खुदा हुआ है जो चार भागों में विभक्त है। पहिले भाग में केवल तीन पंक्तियां हैं और उनमें वीसलदेव का नाम आता है। दूसरे भाग में अशोक की एक आज्ञा पाली अक्षरों में खुदी हुई है। तीसरे और चैाथे भाग में विग्रहराज का उल्लेख है। वीसलदेव के विषय में पहिले भाग में जो लिखा है उसका अनुवाद यह है-"ओं-संवत् १२२० वैशाष शुक्ल १५ को शाकम्भरी भूपति अविल्लदेव के पुत्र वीसलदेव का (लेख)"। उसके आगे वीसलदेव के नाम के साथ विग्रहराज का वर्णन है और यह लिखा है कि उसने विंध्या और हिमालय पर्वतों के मध्य की भूमि के जीत कर और म्लेच्छों को कई बेर इस देश से निर्मूल करके इसे पुनः आर्यावर्त बनाया। इस लेख से विद्वानों ने यह स्थिर किया है कि विग्रहराज वीसलदेव का दूसरा नाम था और उसने १२ वों शताब्दि के अन्त में राज्य किया। विग्रहराज के विषय में दो और शिलालेखों का पता लगा है। पहिले पर तो सोमेश्वरदेव का बनाया हुआ एक नाटक खुदा है, जिसमें बसन्तपाल की कन्या के साथ राजा बिग्रहराज की प्रेम केलि और मुसलमानों के विरुद्ध राजा के युद्धों का वर्णन है। दूसरे पर भी एक नाटक है जिसके रचयिता स्वयं महाराज विग्रहराज हैं। इस दूसरे शिलालेख पर संवत् १२१० (११५३ ईसवी) खुदा है। इनसे अब यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि महाराज विग्रहराज का राजत्वकाल बारहवीं शताब्दि के मध्य में हुआ।

सोमेश्वरराज के समय का एक शिलालेख मेवाड़ में मिला है जिसमें लिखा है कि विग्रहराज अरण्यराज का पुत्र था और "तस्य ज्येष्ठभ्रातृ पुत्रः पृथ्वीराजः" था। ज्येष्ठभ्रातृ का नाम आगे चलकर सोमेश्वर दिया है। वीसलदेव का नाम भी इस लेख में दिया है। पर वह विग्रहराज से तीन पीढ़ी पहिले है। अतएव यह सिद्ध होता है कि विग्रहराज और वीसलदेव एकही पुरुष नहीं थे।

इसके अतिरिक्त पृथ्वीराज रासैा में यह लिखा है कि जिस समय वीसलदेव गुजरात के राजा से लड़ने गया ते। राजा भोज का लड़का उदयादित्य उसके साथ था। वीसलदेव रासैा के अनुसार वीसलदेव ने भोज परमार की कन्या से विवाह किया था और इस भोज का समय डाक्तर राजेन्द्रलाल मित्र के अनुसार सन् १०२६-१०८३ के बीच में होता है। पृथ्वीराज रासैा से यह पता लगता है कि वीसलदेव की एक प्रमार वंशीय रानी थी, क्योंकि आदि पर्व में यह दोहा मिलता है—

ऊंच धाम विसराम किया। रङ्ग साज चतुरङ्ग।
प्रौढा महल प्रवार सों। कहिय सु कथा प्रसङ्ग॥

चन्द वीसलदेव का समय संवत् ८२१ देता है और यह सनन्द विक्रम संवत्* के अनुसार ९१२

* इस सम्बन्ध में चन्द बरदाई पर मेरा लेख पढ़ियेगा जिससे सनन्द संवत् का वृत्तान्त स्पष्ट प्रगट होता जायगा। यह लेख अभी प्रकाशित नहीं हुआ। आशा है कि आगामी संख्या में प्रकाशित हो।

होगा। यह लिखा है कि वीसलदेव ने चौसठ वर्ष राज्य किया था। अतएव इस गणना के अनुसार वीसलदेव की मृत्यु का (९७६ संवत् ९१९ ईसवी) होगा, जबकि न राजा भोज और न उसके पुत्र उदयादित्य ही का जन्म हुआ था। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि लेख के भ्रम से यह संवत् ८२१ बदल गया है, क्योंकि एक दूसरे स्थान पर चन्द बालुकाराव पर वीसलदेव की चढ़ाई और गुजरात विजय का समय ९८६ बताता है। इसलिये ऐसा जान पड़ता है कि वीसलदेव का समय ८२१ न होकर ९२१ होगा। यह समय (९२१ + ९१ + ६४ = १०७६ या १०२० ईसवी) भोज और उसके पुत्र उदयादित्य से भी ठीक ठीक मिल जाता है और इन तीनों का समकालीन होना सम्भवतः सिद्ध हो जाता है। पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्ड्या का कथन है कि राजपुताने की ख्यातियों में ९२१ के स्थान ९३१ मिलता है। यदि यह ठीक है तो वीसलदेव का समय १०३० मानना चाहिए।

इतिहास में वीसलदेव का नाम इसलिये प्रसिद्ध है कि उसने कई बेर मुसलमानों के विरुद्ध लड़ाई ठानी और एक बेर उन्हें पुनः भारतवर्ष से निकालने में सफल-मनोरथ हुआ। इससे उसी युद्ध का आशय है जो राजपुताने के राजाओं ने मुहम्मद गज़नवी (९९७-१०३० ई०) के विरुद्ध ठाना था और जिसमें वे कृतकार्य हुए थे। जो बातें उपर कही गई हैं उनसे यही सिद्ध होता है कि वीसलदेव ईसवी बारहवीं शताब्दि में नहीं हुआ, वरन् ग्यारहवीं शताब्दि के प्रथम अर्द्ध भाग में। फ़िरोजशाह की लाट पर जो लेख है उसके विषय में मेरा यह सिद्धान्त है कि वह केवल वीसलदेव ही से कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं रखता, वरन् उसके नाम का उल्लेख उसमें इसीलिये किया गया है कि वह विग्रहराज के प्रसिद्ध और प्रतापी पुरखाओं में से था। चौहानों के इतिहास में वीसलदेव का नाम निज देश के हितार्थ अनेक साहसपूर्ण कार्यों के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है और विग्रहराज ने, जो दिल्ली न जीत सका, यह समझा हो, कि यदि अपने नाम के साथ वीसलदेव के नाम का उल्लेख हो, तो जो कालिमा मेरे यश में लग गई है वह दूर हो जाय। इसी कारण से उन दोनों का नाम उस शिलालेख पर है। इससे वीसलदेव और विग्रहराज को एक ही पुरुष मानना कदापि उचित नहीं जान पड़ता। आशा है कि इन ऐतिहासिक बातों पर विद्वद्गण विचारें करेंगे।

हिन्दी काव्य (आलोचना)

इस शीर्षक से सरस्वती के प्रथम भाग की बारहवीं संख्या में हमने एक लेख प्रकाशित किया था। उसी पत्रिका के द्वितीय भाग की प्रथम संख्या में पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने उसकी "समीक्षा" लिखी है। उसमें वह लिखते हैं कि "जब बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने साहित्य-रत्नाकर में काव्य के यथार्थ लक्षण को पूर्णरीति से निर्धारित कर ही दिया है, तो फिर मिश्र जी का यह कहना कि 'काव्य का कोई लक्षण तक अद्यापि पूर्ण रूप से संस्थापित नहीं है, अनुचित है"। परन्तु हमने तो रत्नाकर जी कृत लक्षण को अशुद्ध समझ उसका खण्डन ही किया था, तब हम उसे "पूर्ण रीति से संस्थापित" कैसे मान लेते ? ऐसी दशा में हमारा कथन गोस्वामी जी को अनुचित कैसे जान पड़ा? बात यह है कि यदि रत्नाकर जी का लक्षण अपने अभिप्राय को पूर्ण रूप से प्रगट कर सकता तो वह "कविरनुहरतिच्छाया" इत्यादि के अनुसार कुलपति मिश्र के इस लक्षण की "चोरी" कहाने के योग्य होता कि—

"जगतें अद्भुत सुख सदन शब्दऽरु अर्थ कवित्त।
यह लक्षण मैंने कियो समुझि ग्रन्थ बहु चित्त"।

परन्तु उनसे तो यह भी न बना।

गोस्वामी जी के इस कथन का कि हम रत्नाकर जी के लक्षण को नहीं समझ सके और न अपना अभिप्राय पूर्ण रूप से प्रदर्शित कर सके, हम कोई

उत्तर नहीं देना चाहते; इसका उत्तर हमारा लेख ही दे देवैगा। हमने यह कहीं नहीं कहा कि रत्नाकर जी ने पण्डितराज के लक्षण को स्वीकार किया है। उनका उस लक्षण को प्राचीन लक्षणों में "सर्व श्रेष्ठ" मानना मात्र हमने लिखा है। गोस्वामी जी कहते हैं कि" रत्नाकर जी ने पण्डितराज के लक्षण में कुछ परिवर्त्तन भी नहीं किया है"; परन्तु उनका यह कथन उचित नहीं, क्योंकि पण्डितराज ने यह कहा है कि रमणीयता प्रगट करनेवाला शब्द काव्य है और रत्नाकर जी ने यह कहने का प्रयत्न किया है कि रमणीय जुमले (Sentence) या रमणीय अर्थ, या रमणीय जुमले और अर्थ काव्य हैं। तब यह लक्षण कुछ ही परिवर्तित नहीं तो और क्या है? क्योंकि पण्डितराज ने अर्थ की रमणीयता प्रधान मानी है और रत्नाकर जी ने उसमें शब्द और शब्दार्थ दोनों ही की रमणीयता मिलानी चाही है। रत्नाकर जी कृत लक्षण की शुद्धता या अशुद्धता का निबटेरा "वाक्य" शब्द के शुद्धार्थ पर निर्भर है। इसमें तीन प्रश्न हैं–(१) रत्नाकर जी ने उसका अर्थ क्या माना है? (२) पं० किशोरीलाल जी ने क्या बतलाया? (३) हमने क्या लिखा? तदनन्तर यह निर्णय करना है कि इन तीनों में कौनसा अर्थ माननीय है? यहां पर हम यह भी प्रार्थना किए देते हैं कि हम गोस्वामी जी की समीक्षा में से इस ठौर उद्धृत कहां तक करें? अतः पाठक महाशय कृपया इस समय सरस्वती के द्वितीय भाग के पृष्ठ ४ और ५ भी सम्मुख रखलें।

(१) रत्नाकर जी ने अपने काव्यनिरूपण में

"अद्भुत वाक्यहि सो जहां उपजत अद्भुत अर्थ।
लोकोत्तर रचना रुचिर सो कहि काव्य समर्थ"॥

इस लक्षण को खण्डन करते समय लिखा है कि "अद्भुत वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं, एक यह कि उसके अर्थ में अद्भुतता हो और दूसरा यह कि उसके शब्दों में अद्भुतता हो"। इस कथन से यह पूर्णतया परिलक्षित होता है कि वह "वाक्य की अद्भुतता" से या तो उसके शब्दों की अद्भुतता का अर्थ मानते हैं या उसके अर्थ को। परन्तु इन दोनों अर्थों के अतिरिक्त तृतीय अर्थ का होना वे असम्भव समझते हैं; अर्थात् 'शब्दार्थ (शब्द और अर्थ दोनोंही) की अद्भुतता' इस अर्थ का होना वे नहीं मानते। यदि कहिए कि यह तृतीय अर्थ इस दोहे में अनुपयुक्त था, इस कारण नहीं लिखा गया, तो भी आपका कथन योग्य नहीं, क्योंकि अर्थ की अद्भुतता वाला अभिप्राय, जिसका होना रत्नाकर जी ने सम्भव माना है, इस दोहे में इस तृतीय अभिप्राय से भी अधिक अनुपयुक्त है। तो जब "अद्भुत वाक्य" के रत्नाकर जी ने दोही अर्थ माने और यह समझा कि तृतीय हो ही नहीं सकता, तो "रमणीय वाक्य" के तीन अर्थ वह कैसे मान सकते थे? अतः "रमणीय वाक्य" के अर्थ में भी उनके मतानुसार शब्दार्थ की रमणीयता नहीं ली जा सकती; परन्तु वाक्य का यह अर्थ करने में उनके लक्षण में शब्दार्थ रमणीयता की अव्याप्ति हो जायगी। किशोरीलालजी "रमणीय वाक्य" के तीन अर्थ मानते हैं। जब रत्नाकर जी और उनके मतोंही में विभिन्नता वर्तमान है, तब गोस्वामी जी का यह कहना कि "हमें आशा है कि रत्नाकर जी का भी यही (अर्थात् गोस्वामी जी ही का) अभिप्राय होगा", कैसे प्रमाणित हो सकता है?

(२) गोस्वामी जी ने "वाक्य" का जो लक्षण कहा है उसमें एक प्रकार का अन्योऽन्याश्रय दूषण वर्तमान है। उनके मतानुसार "संज्ञा और क्रिया... जब वाक्य में व्यवहृत होने की योग्यता प्राप्त करते हैं तब ये पद (शब्द) कहलाते हैं" और पदों (शब्दों) के ऐसे समूह को वाक्य कहते हैं जोकि अर्थ बोध कराने में सम्पूर्ण हों"। इनमें "पद (शब्द)" और "वाक्य" के लक्षण एक दूसरे के आधार पर स्थिर किए गए हैं जो तर्कशास्त्र (Logic) के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं। यह लक्षण तो ऐसा ही हुआ जैसे

यह कि "यह घोड़ा उसका है जिसका मैं नौकर हूं" और "मैं उसका नौकर हूँ जिसका यह घोड़ा है"। आप कहते हैं कि "वाक्य की रमणीयता से शब्दों के सार्थक समूह की रमणीयता ग्राह्य है" इस जुमले (sentence) में सार्थक होना शब्दों का एक गुण है। अतः इसका आशय यह निकला कि वाक्य रमणीयता एक गुण-विशेष वाले शब्दों के समूह की रमणीयता है। तब केवल अर्थ-रमणीयता तथा शब्द और अर्थ दोनों की रमणीयता आपकी वाक्य रमणीयता के बहिर्गत हुई जाती है, इससे आपके लक्षणानुसार केवल चित्र काव्य काव्य ठहरता है। यदि कहिए कि शब्दों के सार्थक मात्र होने के कारण हम उनसे शब्दार्थ रमणीयता का अभिप्राय ले लेंगे तो चित्र काव्य भी आपके लक्षण से निकल जायगा; क्योंकि उसमें अर्थ रमणीयता होती नहीं, नहीं तो वह भी पण्डितराज के लक्षण में आजाता, तब आप कैसे कह सकते हैं कि "यह (वाक्य की) रमणीयता तीन प्रकार से आ सकती है, अर्थात् अर्थ चमत्कृति, शब्द चमत्कृति और शब्दार्थ चमत्कृति से। अतएव इन तीनों कारणों में से एक के भी उपस्थित रहने से वाक्य की रमणीयता हो जायगी"? आप तो अर्थ चमत्कृति अपनी वाक्य रमणीयता के लक्षण में लाही नहीं सके! अब यदि आपका अभिप्राय, जिसे आप प्रगट नहीं कर सके, मान भी लिया जाय, तो आपही के मतानुसार वाक्य में शब्द और अर्थ दोनोंही होते हैं। तब दोनों के रमणीय हुए बिना वाक्य कैसे रमणीय कहा जा सकता है? यदि किसी व्यक्ति में दस गुण और उतने ही अवगुण हों तो उसे गुणवान कहने की अपेक्षा लोग प्रायः अवगुणी अधिक कहेंगे। जैसे केवल शब्द या केवल अर्थ वाक्य नहीं कहे जा सकते, वैसेही इनमें से केवल एकही की रमणीयता भी वाक्य की रमणीयता नहीं हो सकती। तात्पर्य्य यह कि इस हिसाब से वाक्य तभी रमणीय होगा जब उसके शब्द और अर्थ दोनोंही रमणीय हों।

(३) हमने वाक्य शब्द को ऐसा साधारण समझा था कि उसके लक्षण देने का ध्यान तक हम को न आया। जो ब्रॅकेट में वाक्य शब्द के आगे हमने "बोली, भाषा, या पद" लिख दिया था और जिससे भ्रमवशात् गोस्वामी जी ने यह समझा कि वेही हमारे मतानुसार वाक्य के अर्थ हैं, वे शब्द वस्तुतः केवल स्थूल रूप से समझाने के निमित्त लिखे गए थे। एक बार उन्हें पुनः देखिए। "यदि रत्नाकर जी का प्रमाण मानिए तो ऐसे निर्माणों को जिनमें भाव कैसाही उत्तम क्यों न हो, परन्तु वाक्य (अर्थात् बोली, भाषा, या पदों की) रमणीयता न हो, काव्य न कह सकिएगा" हमारे इस कथन से हमारा यह अभिप्राय न था (और न निकलता है) कि वाक्य शब्द के अर्थ "बोली, भाषा, या पद हैं" वरन इसका आशय यह है कि बोली भाषा आदि की ही रमणीयता को हम वाक्य रमणीयता मानते हैं, न कि अर्थ रमणीयता को। यदि हम वाक्य शब्द का अर्थ बोली, भाषा, या पद ही समझे होते (जैसा कि गोस्वामी जी को भ्रम हो गया है) तो उसी लेख के पृष्ठ ४१९, कालम २, पंक्ति १९—२० में, हम यह कैसे लिखते कि बहुत से समस्यापूर्ति-कारों को "शुद्ध वाक्य रचना का भी परिज्ञान नहीं होता"? क्या इससे यह अभिप्राय निकाला जायगा कि उन्हें शुद्ध "शब्द" रचना का परिज्ञान नहीं होता! और क्या कवि का अर्थ वैयाकरण है कि वह व्याकरण की रीति से शुद्ध शब्द कहे! इससे स्पष्ट विदित है कि हम वाक्य शब्द के अर्थ जुमले (Sentence) के सदा से मानते आए हैं और यदि गोस्वामी जी हमारे लेख को ध्यान पूर्वक पढ़े होते तो उन्हें यह भ्रम कदापि न होता कि "भ्रमवश मिश्र जी (हम)ने वाक्य का अर्थ शब्द समझ लिया है"। जैसे गोस्वामी जी इस भ्रम में पड़ गए वैसेही वह चाहें तो यह भी समझ बैठें कि इसी स्थल पर "मिश्र जी" के आगे ब्रॅकेट में हमारे "हम" शब्द लिख देने के कारण हम "मिश्र जी" का अर्थही "हम" समझते हैं। वास्त

में जैसे इस स्थल पर हमने " मिश्र जी" शब्दों के आगे समझाने मात्र को "हम" शब्द लिखदिया है, वैसेही उस ठौर "वाक्य" शब्द के आगे " बोली भाषा, या पद" यह लिखदिया था। पर जैसे "मिश्र जी" का अर्थही "हम" नहीं हो सकता उसी प्रकार "वाक्य" का अर्थ "बोली, भाषा, या पद" नहीं हो सकता। इसी भांति भारतेन्दु जी ने हरिश्चन्द्र मैगज़ीन, पृष्ठ १२७, कालम २, पंक्ति २७ में लिखा है– "बहुत लोगों की राय अर्थात् बुद्धि" पर क्या कोई कह सकता है कि वह महाशय "राय" शब्द का अर्थ "बुद्धि ही" मानते थे? वास्तव में ऐसे शब्द केवल समझाने मात्र को लिख दिए जाते हैं, सभी जुमले सार्थक अवश्य होते हैं, परन्तु केवल "वाक्य" शब्द से उनके अर्थ का बोध नहीं होता और इस अभिप्राय के लिये "शब्दार्थ" शब्द का प्रयोग भाषा में किया जाता है। भाषा संस्कृत की पुत्री अवश्य है, परन्तु यह अपनी जननी से कुछ माँगने तभी जाती है जब इसके पास वह पदार्थ विद्यमान नहीं होता। अतः "वाक्य" के अर्थ संस्कृत में खोजने हम तभी जांयगे जब भाषा में वे न पाए जांय। परन्तु जब भाषा आचार्य्यों ने उसपर विचार किया ही है तब क्या आवश्यकता है कि भाषा का सीधा साधा अर्थ छोड़ हम संस्कृत में भटकते फिरें? रत्नाकर जी ने काव्यनिरूपण ग्रन्थ हिन्दी भाषा में लिखा है, अतः उनके शब्दों का अर्थ वही लिया जायगा जो उसी भाषा के आचार्य्यों ने स्थिर किया है। इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं कि संस्कृत और हिन्दी में एक ही शब्द के अर्थ पृथक पृथक हुआ करते हैं, पर किसी किसी शब्द के विषय में यह बात कही भी जा सकती है। माना कि कलकत्ता हाईकोर्ट हमारी हाईकोर्ट से बड़ी है, पर इस प्रान्त में इलाहाबाद ही की हाईकोर्ट के फ़ैसले विशेष माने जाँयगे और कलकत्ते की नज़ीरें यहां तभी मानी जाँयगी जब वे हमारी प्रान्तिक हाइकोर्ट की किसी नज़ीर के विरुद्ध न हों। यही दशा संस्कृत और देवनागरी की है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और काशी नागरीप्रचारिणीसभा की "लेख और लिपि प्रणाली" पुस्तक के अनुसार जब भाषा का कोई सुयोग्य शब्द मिलै तब तक संस्कृत शब्द व्यवहृत न होना चाहिए।

"वाक्य" शब्द का अर्थ दास जी यों लिखते हैं– " पद समूह रचनानि को वाक्य बिचारहु चित्त" (काव्यनिर्णय)। इस लक्षण में उन्होंने अर्थ का नाम तक न लिया जिससे ज्ञात होता है कि "वाक्य" शब्द में "अर्थ" बोध कराने का सामर्थ्य वह महाकवि नहीं मानते थे। इससे कोई यह न समझे कि कोई वाक्य अर्थरहित होता है, वरन् तात्पर्य यह है कि "वाक्य" शब्द "अर्थ" का बोधक नहीं। उसी ग्रन्थ में दास जी फिर लिखते हैं— "दोष शब्दहू अर्थ हू वाक्य रसहु में होय"। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि दासजी शब्द, अर्थ और वाक्य इन तीनों को एक दूसरे से पृथक मानते हैं और उन्होंने दोषों के अध्याय में शब्ददोष, वाक्यदोष, और अर्थदोष इन तीनों को पृथक पृथक वर्णन किया है। यदि वे "वाक्य" शब्द को अर्थ और शब्दसमूह दोनों का बोधक मानते तो वाक्य और अर्थ के दोषों को उन्हें पृथक करके दिखाने की आवश्यकता न पड़ती। यदि कहिए कि 'इससे तो कहा जा सकता है कि वाक्य शब्द न अर्थ का बोधक है और न शब्द का, क्योंकि दासजी ने शब्द, अर्थ और वाक्य तीनों को एक दूसरे से पृथक माना है तो इसका उत्तर हम यह देंगे कि वस्तुतः "वाक्य" शब्द न "अर्थ" का बोधक है और न "शब्द" का, वरन् वह "शब्दसमूह" का बोधक है, क्योंकि एक शब्द वाक्य नहीं हो सकता, यह "शब्द समूह" सार्थक अवश्य होना चाहिए। पर "वाक्य" शब्द मात्र अर्थ का बोध नहीं कराता। दास जी के "दोष शब्दहू अर्थहू वाक्य रसहु में होय" इस वाक्य से उपर्युक्त आशय पूर्णतः पाया जाता है। फिर उन्हीं महाकवि जी ने कहा है कि "भूषण* छरासी अर्थ के

* अलंकार।

आठ वाक्य के जोर" ग्रैार "शब्दालंकृत पाँच गुनि चित्र काव्य इक पाठ"—ये दोनों कहावतें मिलाने से हमारा उपर का कथन सन्देह के राज्य ही के बाहर हो जाता है। पर यदि यह सब जान कर भी कोई सन्देह करे तो सिवाय दुराग्रह के उसे ग्रैार क्या कह सकते हैं? इसीकी पुष्टि देवजी के इस दोहे से होती है कि–

"सरस वाक्य पद ग्ररथ तजि चित्र काव्य समुहात।
दधि घृत मधु पायस तजत बायस चाम चबात"॥
(शब्द रसायन*)

इन प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि "वाक्य शब्द का ग्रर्थ "ग्रन्विन्तर्थक शब्द समूह ग्रैार उनके ग्रर्थ" नहीं वरन् केवल "ग्रन्वितार्थक शब्द समूह" है। यदि कोई कहे कि "यह वाक्य दूषित है" तो इसका ग्रर्थ यह होगा कि "इस वाक्य की शब्दावली का क्रम दूषित है"। ऐसी दशा में हमारी "वाक्य" शब्द की बिवेचना, जिससे देव, दास ग्रादि महाकवि सहमत हैं, ग्रशुद्ध कैसे ठहर सकती है जबकि कोई बात उसके विरुद्ध नहीं पाई जाती ?

ग्रब "वाक्य" शब्द का ग्रर्थ निर्धारित हो चुका ग्रैार यह भी सिद्ध होगया कि हिन्दी में रत्नाकर जी ग्रैार किशोरीलाल जी महाशयों के ग्रर्थ माननीय नहीं हैं। ग्रब यह निर्णय शेष है कि कैान लक्षण शुद्ध है। रत्नाकर जी के लक्षण ("होय वाक्य रमणीय जो काव्य कहावै सोय") में जो दूषण हैं उन्हें हम ऊपर लिख ही ग्राए हैं ग्रैार "वाक्य" का जो ग्रर्थ उन्होंने ग्राप ही माना है (जिसका बिवेचन भी ऊपर हो चुका है) उससे भी उनका लक्षण ठीक नहीं। गोस्वामी जी जो "वाक्य" शब्द का ग्रर्थ मानते हैं वह ग्रशुद्ध तो नहीं है पर भाषा में उसका व्यहार नहीं हो सकता। पर यदि हम उसे मान भी लें तो वाक्य रमणीयता से शब्द समूह ग्रैार ग्रर्थ दोनों को रमणीयता का ग्रभिप्राय निकलेगा ग्रैार इस हेतु चित्रकाव्य ग्रैार केवल ग्रर्थ रमणीयता वाली कविता इस लक्षण में नहीं ग्रासकती। हम "वाक्य" शब्द का ग्रर्थ "ग्रन्वितार्थक शब्द (पद) समुदाय" मानते हैं जिसे जुमला या Sentence कहते हैं। पर इस शब्द ("वाक्य") को ग्रर्थ का बोध कराने में हम ग्रसमर्थ मानते हैं ग्रैार ऐसा मानने के कारण हम ऊपर सविस्तार दे ग्राए हैं। इन कारणों से "वाक्य" रमणीयता का ग्रर्थ शब्दसमूह की रमणीयता मात्र का ग्रर्थ लिया जायगा जिससे ग्रर्थ रमणीयता ग्रैार शब्दार्थ रमणीयता की इस लक्षण में ग्रव्याप्ति सिद्ध है।

हमारे लक्षण ("वाक्य, ग्रर्थ, वा एकहू जहँ रमणीय सु होय। शिरमैारग्ररु शशिभाल मत काव्य कहावै सोय") में शब्द रमणीयता, ग्रर्थ रमणीयता, ग्रैार शब्दार्थ रमणीयता किसीकी भी ग्रव्याप्ति नहीं होती ग्रैार "वाक्य" शब्द के कारण जुमले (Sentence) के ग्रधूरे रहने का भी दोष नहीं लग सकता ग्रैार इस लक्षण से यह भी व्यञ्जित हो जाता है कि शब्दार्थ की रमणीयता से काव्य उत्तम पर उनमें से केवल एक ही की रमणीयता से मध्यम होगा। इनमें भी यह कहना ग्रयोग्य नहीं कि ग्रर्थ रमणीयता वाला काव्य मध्यम ग्रैार शब्द रमणीयता वाला ग्रधम है।

तुकान्त ग्रैार विश्राम-चिन्ह-रहित पदों पर जो हमने लिखा उसपर भी गोस्वामी जी ने ग्रपना मत प्रकाश किया है; पर इन दो विषयों को जिन्हें हमने बिलकुल पृथक पृथक रक्खा था उक्त महाशय ने एक ही में करके बड़ा गोलमाल करदिया है। ग्रतः हम फिर उनपर ग्रलग ही ग्रलग ग्रपने विचार प्रकाशित करते हैं—

(क) तुकान्त—गोस्वामी जी की समझ में चाहे यह सुगमता का बाधक हो या नहीं, पर हमें तो वह स्वच्छन्द काव्य निर्माण का एक बहुत बड़ा बाधक जान पड़ता है। कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनके तुकान्तवाले बहुत शब्द नहीं होते; वहाँ पर

* यह दोहा हमारे इसी मुख्य लेख में कुछ गड़बड़ छप गया था।

वही एक ही दो बँधे हुए शब्द बिना प्रयोजन भी केवल अनुप्रास के हेतु लाने पड़ते हैं, यथा बिप्र-क्षिप्र। "शीघ्र" के तुकान्त ही नहीं मिलते। इसी प्रकार "आवत श्याम उछारत नीवू" इत्यादि इत्यादि समस्याओं की पूर्ति करना असम्भव नहीं तो दुस्साध्य अवश्य है। यदि ऐसा न होता तो स्वयं बाबू हरिश्चन्द्र जी ने इस समस्या के बिषय में कि "सूरज देखि सके नहिं घुग्घू" ऐसा क्यों कहा होता कि इस पर अच्छी कविता होही नहीं सकती? क्या उनका भी शब्दसागर पर पूर्ण अधिकार न था? और क्या उनको भी कोई "कवि नहीं वरन् रङ्क" कह सकता है? उत्तरचातकाष्टक के द्वितीय श्लोक के अनुवाद में (सरस्वती, भाग एक, संख्या १२, पृष्ठ ३९५, देखिए) स्वयं पं० किशोरीलाल जी को भी तुकान्त के बशीभूत हो, तृतीय पद में "चातकपावन" लिखना पड़ा, यद्यपि "पावन" शब्द उस ठौर पर उपयुक्त नहीं और न उसके आशय का कोई शब्द मूलही में है; वरन् मूल में तो "आदरात्" शब्द पाया जाता है। अब उन असंख्य शब्दों में से, जो कि इस समय कवि के सम्मुख हाथ बांधे खड़े, स्वीकारार्थ प्रार्थना कर रहे थे, कवि ने न जाने क्यों मूलार्थ समर्थक कोई शब्द न चुना! यदि तुकान्त का बन्धन न होता तो कदाचित् "सादर" शब्द द्वारा मूल का अर्थ भी आजाता, और अविश्रामान्त पद भी बन जाता। फिर उन असंख्य शब्दों में से "नार" ऐसा ग्रामीण शब्द कवि ने क्यों चुना? सम्भवतः असंख्य शब्दों के समारोह में कवि ऐसा चलितधैर्य्य हो जाता है कि चुनाव की घबराहट में स्वामिभक्त सेवकों को छोड़ विद्रोहियों को चुन लेता है। चौथे श्लोक के अनुवाद में तृतीय उत्तरचरणार्द्ध देखिए, "उर अन्तर जो तुवध्यान लह्यो"!! "ध्यान लह्यो" क्या वस्तु है? क्या यह तुकान्त-देवी ही का प्रसाद नहीं है? मूल का आशय यह है कि उसने ध्यान किया, परन्तु तुकान्तार्थ "लह्यो" शब्द के आने से इस अनुवाद की पंक्ति का आशय यह हो गया कि उसने वह ध्यान अपने से अतिरिक्त किसी वाह्य पदार्थ से पाया!

यदि "लह्यो" के स्थान पर तुकान्त को अलग रख "कियो" या "धर्यो" शब्द कवि महाशय रख सकते तो यह त्रुटि कदापि न होती। अब रत्नाकर जी को देखिए—वसन्त (सरस्वती, भाग १, पृष्ठ १२२) में वह महाशय लिखते हैं।

"बन सोभा बरबसहि लोचननि लेत लुभाये"।
"जित जित जात जात रहि तितही तित बिरुझाये"

यहां "बिरुझाये" के स्थान पर उपयुक्त रुप 'बिरुझाय" होता, पर तुकान्त ने न माना और कवि जी को बरबस अनुपयुक्त रुप लिखना ही पडा। काशी कविसमाज की समस्यापूर्तियों के द्वितीय भाग, पृष्ठ १५०, में "बाँसुरी बजावै है" की पूर्ति में रत्नाकर जी ने द्वितीय पद में जो "भुजङ्ग दरसावै है" लिखा है इसके विषय में क्या कोई कह सकता है कि तुकान्त का बंधन न होने पर भी वह शब्द जैसे के तैसे लिखे गए होते? कविता रचने में सबको वही कठिनाइयाँ आ पड़ती हैं, यों चाहे कोई कहे—

"कोउ तुकान्त बिन पद्य लिखन में है अरुझानो"।

और चाहे इससे भी अधिक बढ़ जाय। यहां पर यही दो चार प्रमाण अलम् होंगे। परन्तु यदि आवश्यकता हुई तो समयान्तर में हम स्वयं पं० किशोरीलाल जी की कविता में या जिस कवि की रचना में वे कहें उसमें अनेक ऐसे प्रमाण दिखा देंगे जहाँ कवि को तुकान्त के कारण अर्थ का चमत्कार तक नाश करना तथा अव्यवहृत और कारणविरुद्ध शब्द प्रयोग करना पड़ा है। राजा और उसके सेवकों वाला उदाहरण तो गोस्वामी जी ने अच्छा ढूंढ़ा, पर यह उदाहरण कवि और शब्दों के विषय में एक तो घटता ही नहीं, और यदि ऐसा मान भी लिया जाय तो उत्तर में यही कहा जायगा कि जैसे एक ही आकृति और रुप वाले अनेक सेवक राजाओं के पास प्रायः बहुत

नहीं हुआ करते, वरन् कुछ सेवक ऐसे होते हैं जिनके रूप और आकृति अन्य सेवकों से मिलते ही नहीं; वैसे ही एक ही तुकान्द वाले अनेक शब्द कवियों के पास बहुत नहीं होते, वरन् कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका तुकान्त वाले अन्य शब्दों से मिलना असम्भव सा हो जाता है। अतः तुकान्त का नियम छोड़ देने से काव्य निर्माण में सुबीता अवश्य हो जायगा और हानि कुछ भी नहीं। जब तक कोई परिपाटी स्थिर नहीं होजाती तब तक उसपर आन्दोलन करने में लोग प्रायः बिरोध ही किया करते हैं; नहीं तो तुकान्त रहित छन्दों के विरुद्ध कोई युक्ति-सङ्गत प्रमाण है ही नहीं। अन्यथा संस्कृत वा अंग्रेज़ी में इसका व्यवहार क्यों किया जाता? शेक्सपियर और मिलटन बालकाल में तुकदार कविता ही अधिक करते थे, पर प्रवीण काल में तुकान्त-रहित छन्द ही उन्हें विशेष प्रिय होगए थे। हमारी समझ में तो तुकान्तरहित पद्य जो स्वच्छन्दता से यमक आदि के विशेष फेर में पड़े विना निर्माण किए जायं, उनमें काव्यरचना-शक्ति-सम्पन्न लोगों को प्रायः वैसीही सुगमता प्रतीत होगी जैसी गद्य लिखने में है।

(ख) विश्राम-चिन्ह-रहित पद—विदित हो कि इस सम्बन्ध में "पद" शब्द का अर्थ छन्द का एक चरण (पंक्ति) है। यद्यपि ऐसा नियम कहीं लिखा तो नहीं है "कि एकही पद में कवि अपना भाव तोड़ मरोड़ कर ठूंस दे" पर देखा गया है कि प्रायः सभी प्राचीन और नवीन कविजन इस बेलिखे नियम का पालन अवश्य करते हैं। "जात खड़ी बोली पै कोऊ भयो दिवानो" इत्यादि में जो गोस्वामी जी ने इसी सम्बन्ध में उद्धृत किया है, क्या एक भी पद ऐसा है जिसके अन्त में कोई विश्राम-चिन्ह न हो? कुछ इसीपर नहीं; हिन्दी काव्य के एक सहस्र छन्दों में भी कदाचित् ही दो एक पद मात्र ऐसे निकल आवैं! मित्रवर पण्डित महावीर प्रसाद जी द्विवेदी कृत "नागरी! तेरी यह दशा!!" शीर्षक पद्य के सप्तम छन्द का तृतीय चरण ऐसा है; हम ऐसे पदों को अति श्लाघनीय मानते हैं—

> पद्मावती जिन रची ललिता, ललामा,
> विख्यात जे अपर क़ादिर आदि नामा,
> इस्लाम जाति, तउ कै तिन मातु! तोरी
> आराधना, सुयशराशि घनी बटोरी"॥

हर्ष का विषय है कि गोस्वामी किशोरीलाल जी ऐसे विद्वान् महाशय ने "साहित्य" शीर्षक प्रबन्ध लिखने की प्रतिज्ञा की है। आशा है कि गोस्वामी जी इस प्रतिज्ञा को शीघ्रही पूर्ण कर हिन्दी भाषा का उपकार करैंगे। परन्तु उन्होंने उस लेख में हमारी आलोचना के "सम्बन्धातिशयोक्ति" आदि अनेक विषयों पर लिखना और हमारे समस्त "प्रबन्ध का भी सम्यक उत्तर" देना स्थिर किया है। इसमें हमारी समझ में नहीं आता कि "उत्तर" वह किस बात का देंगे। क्या हमने अपनी आलोचना में उनसे कोई प्रश्न किया है? अथवा उनके किसी कथन आदि का खण्डन किया है? अस्तु, जो कुछ हो, हम अपने उस प्रबन्ध के विषय में दो एक बातें प्रथम ही से लिख देना उचित जानते हैं जिसमें भ्रम की बातें यथासम्भव न आने पावैं।

१—अनुप्रास हमने तीनही प्रकार के लिखे हैं, यद्यपि वास्तव में वे बारह प्रकार के होते हैं; यथा-(१) समसरि, (२) विषमसरि, (३) कष्टसरि, (४) असंयोगमिलित, (५) स्वरमिलित, (६) दुर्मिल, (७) अमिल सुमिल (८) आदि मत्त अमिल (९) अन्तमत्त अमिल, (१०) बीप्सा, (११) यामकी, (१२) लाटिया। यदि पूछिए कि हमने इनमें से तीनही का वर्णन क्यों किया, तो इसका कारण यह है कि हम मुख्य तुकान्त (अनुप्रास) प्रथम तीनही को मानते हैं और इसी कारण कष्टसरि के उदाहरण में हमने स्वरमिलित अनुप्रास लिख दिया। देव जी ने भी सब अलङ्कारों को दबा कर केवल स्वभाव और उपमा दो ही मुख्य माने हैं—हमारे समसरि के उदाहरण में द्वितीय कवित्त के अन्तिम चरण में "ह्वैं गई" के स्थान पर "दै गई" शुद्धपाठ है, जैसा कि हमारे लव-कुश-चरित्रमें प्रथमही से प्रकाशित हो चुका है।

(२) "पदमैत्री" और "यमक" ये दोनों शब्द हमने अति विस्तृत आशय में प्रयोग किए हैं, न कि उन संकीर्ण भावों में जो काव्यप्रणाली में इन्हें दिए गए हैं। हम इनसे Alliteration का आशय लेते और इन्हें एकही अर्थबोधक मानते हैं।

(३) "सम्बन्धातिशयोक्ति" शब्द भी हमने Hyperbole (मुबालिग़ा अर्थात् किसी वस्तु को बहुत बढ़ा कर कहना) के विस्तृत आशय में प्रयोग किया है।

(४) समस्या-पूर्ति के विषय में हमें इतना और वक्तव्य है कि कानपुर के रसिक-समाज की पूर्तियां जो रसिक-वाटिका में प्रकाशित होती हैं, ऐसेही अन्य समाजों और मंडलों की पूर्तियों की अपेक्षा प्राय श्रेष्ठ हुआ करती हैं, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि उनमें से भी सभी पूर्तियां अच्छी नहीं कही जा सकतीं। अवकाश होने पर इस विषय में आवश्यकतानुसार हम एक स्वच्छन्द प्रवन्ध लिखने का प्रयत्न करेंगे। पर यह समस्यापूर्ति की प्रथाही हानिकारक है। कवि-समाज, सभा, मण्डल इत्यादि को उचित है कि समस्या-पूर्ति के नियम को एकबारगी परित्याग कर यह स्थिर करलें कि उनके मेम्बर लोग अपनी अपनी रुचि के अनुसार जिस विषय पर जिस छन्द में जिस प्रकार चाहें कविता करके प्रकाशार्थ मन्त्री के निकट भेज दिया करें और येही कविताएं यथास्थान उन समाजों की पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करें। ऐसा करने से कवि को मनोवाञ्छित कविता करने की पूर्ण स्वच्छन्दता भी रहैगी और कविसमाजों को निज कर्तव्य पालन करने में कोई बाधा भी न उपस्थित हो जायगी। फिर कुछ ही काल में देखिए कि ये सब समाजें कैसी उन्नति करती हैं! कविता तो स्वच्छन्दता बिना उत्तम बन ही नहीं सकती। आपने कह दिया कि "केहि कारन सुन्दरि रूप ढरयो," या "केहि कारन कान निकाली है जाली ?" अथवा "कीकर पतान में" इत्यादि पर इनपर क्या उत्तम कविता हो सकती है! माना कि अच्छी समस्याएं भी दी जा सकती हैं और कभी कभी दी भी जाती हैं, पर एक तो जिस समाज से कहिए उसी में दी हुई अधमाधम समस्याएं हम बतादें और दूसरे जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, उत्तमोत्तम समस्या की पूर्ति करने में भी वही पराधीनता है जो अधम से अधम की पूर्ति में।

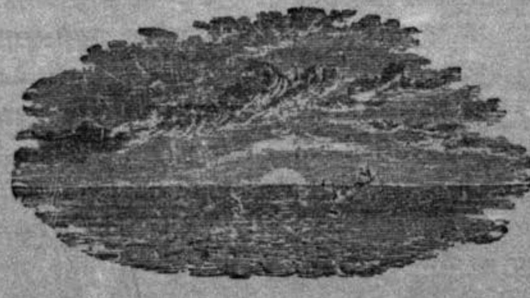
इस प्रणाली में जो लोग पड़ जाते हैं उनकी एक बात पर हमें आश्चर्य सा होता है कि वे यदि अपने इच्छानुसार कोई स्वच्छन्द कवित्त भी निर्माण करने बैठते हैं, तो प्रायः देखा गया है कि वे एक न एक समस्या पहिले अवश्य सोच लेते हैं और फिर उसीकी पूर्ति में प्रवृत्त होजाते हैं! इसका कारण यही है कि चिर अभ्यास से स्वच्छन्द काव्य की बात ही वे भूल जाते हैं और बिना कोई समस्या स्थिर कर लिए वे महाशय एक कवित्त तक कठिनाई से निर्माण कर सकते हैं! बलिहारी इस दासत्व की!!

फिर स्फुट कवित्त तभी अच्छे लगते हैं जब उनमें कोई विशेष गुण हो। कथा प्रसंग में तो चाहे कोई कवित्त नितान्त साधारण ही हो, पर प्रसंग से वह भी अच्छा ही जान पड़ता है और यदि उसमें थोड़ोसी भी अच्छाई आ गई तो वह विशेष सुहावना जान पड़ने लगता है। परन्तु स्फुट कविता में यह बात होती है कि जिस विषय का वर्णन उसमें किया जाय उसका वर्णन भी पूर्ण हो जाय, और कोई न कोई चमत्कार भी उतने ही चार पदों में अवश्य आजाय, नहीं तो कवित्त फीका कहलावैगा। कोई स्फुट कवित्त लीजिए, उसमें कोई छोटी सी कहानी अवश्य पाइएगा। पर एकही कवित्त में एक छोटी से छोटी पूर्ण कहानी कह देना और उसपर भी उसमें कोई न कोई काव्य चमत्कार भी लाना हंसी ठट्ठा नहीं है। ऐसी दशा में साधारण कवि लोग स्फुट कविता योंहीं अच्छी न कर सकेंगे, पर जब उसमें एक तुक विशेष का होना भी आवश्यक कर दिया जाय (जैसा कि समस्यापूर्ति में होता है), तब तो कठिनाई का पारही क्या है? सो इस प्रणाली की कविता से लाभ क्या! फिर

यदि कोई कवि जन्मभर प्रत्येक समाज की पूर्तियां ही किया करै ग्रैार कुछ कुछ ग्रच्छी पूर्तियां करने में समर्थ भी हो तो भी ग्रन्त में उसकी कविता क्या कहलावेगी ? ग्रैार यदि भद्दी पूर्तियां बनीं तब तो कहना ही क्या है ! इसके विरुद्ध यदि वह दो चार छोटे मोटे काव्य ग्रन्थ बना ले तो यह कहा जा सकता है कि उसने कुछ ग्रवश्य किया। यदि गोस्वामी तुलसीदासजी ग्रथवा चरणचन्द्रिका* निर्माण करने वाले पण्डित रामचन्द्र जी ग्राजन्म समस्या पूर्तिही करते रहते तो ग्राजदिन उनका कैान नाम जानता ? वैसेही ग्राजकल पण्डित महावीर प्रसाद जी द्विवेदी ग्रैार पण्डित श्रीधर पाठक का यह यश कदापि न होता यदि वे स्वच्छन्द काव्य छोड़कर समस्या-पूर्ति करने पर कटिवद्ध हो जाते।

समस्या-पूर्ति की चलन यों चली कि यहां के कविजनों को प्रायः किसी न किसी राजा या धनी का ग्राश्रयी होना पड़ता था ग्रैार कुछ कवि लोग ऐसे भी होते थे जो ग्रनेक धनवान व्यक्तियों के यहां जाया करते थे, ग्रैार ये दोनों चालें कई ग्रंशों में ग्रब तक वर्तमान हैं (इस विषय में इसी लेख के शीर्षक वाले हमारे मुख्य प्रवन्ध को देखिए)। ऐसी दशा में यदि किसी व्यक्ति के यहां कोई कवि महाशय ग्रा गए तो उनकी कवित्व शक्ति की परीक्षा का सुगम मार्ग कोई समस्याही दे देना ठहराया गया। बस इतनेही ग्रभीष्ट के लिये समस्या-पूर्ति उपयुक्त कही भी जा सकती है; पर उसकी समाजें स्थापित कर देना, तथा उसकी मासिक पत्रिकादि प्रकाशित करने लगना, तो कदापि उचित नहीं। ग्रतः यह भूल जितनी शीघ्रता से संशोधित कर ली जाय उतना ही ग्रच्छा है। हम सर्व समस्या-पूर्ति समाजों से हठ छोड़ ग्रैार पक्षपात रहित हो कर उपर्युक्त बातों पर विचार करने का ग्रनुरोध करते हैं॥

* यह छोटा सा ग्रन्थ भी देखनेही योग्य है।





परलोकवासिनी भारतेश्वरी महाराणी विक्टोरिया
[वयस ८० वर्ष]

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] मई १९०१ ई० [संख्या ५

विविध वार्त्ता

ईश्वर की सृष्टि का नियम है कि जब वृक्ष रोपित हो फलने फूलने लगता है और उसकी शाखाएं और टहनियां चारों ओर फैलने लगती हैं, तो समय पाकर वह इतना प्रौढ़ हो जाता है कि तब यदि यह उद्योग किया जाय कि डालें और टहनियां अमुक रुप धारण करें और वह पेड़ सीधा हो अथवा टेढ़ाही रहे, तो यदि निष्फल नहीं तो दुसाध्य यह अवश्य हो जायगा। ठीक ऐसी ही अवस्था हिन्दी भाषा की है। उसके पद्य ने सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में जो उन्नति प्राप्त कर ली वह अब उसे मिलनी कठिन है। गद्य तो अभी एक सौ वर्ष का हुआ है, पर अब इसके फलने फूलने के दिन आए हैं। पूर्व की अपेक्षा अब कुछ विशेष ग्रन्थों के बनने और पढ़ने पढ़ाने की चर्चा सुनने में आती है। पर अवस्था यह हो रही है कि जिसके जो मन में आता है अड़ांग सड़ांग लिख मारता है। यद्यपि व्याकरण के एक नियम का भी पालन न किया गया हो, यद्यपि लिखावट अशृङ्खल हो और शब्दों की गढ़न मन मानी रीति से की गई हो, पर कोई पूछने वाला नहीं कि क्या हो रहा है। इस समय उपन्यासों की भरमार है, पर इनकी भी वह शोचनीय अवस्था है कि ग्रन्थ-कर्ता महाशय स्वयं अपने घर की स्त्रियों को उन्हें पढ़ने के लिये देने से सकुचाएंगे। इनमें ऐसे असभ्य और अश्लील शब्दों का प्रयोग किया जाता है कि कोई सभ्य पुरुष ऐसी पुस्तकों के छूने में भी अपने को महापातकी समझेगा। पर आज कल इन्हीं पुस्तकों की बिक्री है, इन्हींकी पूछ है और इन्हींके बदौलत न जाने कितने ही छोकड़े ग्रन्थकार बन बैठे हैं और प्रसिद्ध पुराने लेखकों की अप्रतिष्ठा करने में अपने भरसक कोई बात उठा नहीं रखते। ऐसी शोचनीय अवस्था में इससे बढ़कर अच्छा और कोई उपाय नहीं हो सकता कि एक 'समालोचक समिति' स्थापित की जाय और उसके

द्वारा समस्त ग्रन्थों की सच्ची समालोचना हो। हम इस प्रस्ताव से पूर्ण सहमत हैं, पर जिस प्रकार से इसका प्रबन्ध हो रहा है उसका हम हृदय से विरोध करते हैं। इस समय सब लोग इस बात को स्वीकार करेंगे कि काशी की नागरीप्रचारिणी सभा, जिसमें हिन्दी के प्रायः सब लेखक सम्मिलित हैं, एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा हिन्दी विषयक सब काम होने चाहिएं। हमारी सम्मति है कि काशी की सभा अपनी ओर से एक कमेटी चुने हुए हिन्दी लेखकों और तत्वज्ञों की नियत करदे। हमारी सम्मति में इस कमेटी के निम्नलिखित सभ्य चुने जाने चाहिएं—(१) पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी, (२) पण्डित श्रीधर पाठक, (३) पण्डित श्याम बिहारी मिश्र, (४) पण्डित माधवराव सप्रे, (५) पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री। इन्हीं लोगों को पुस्तकों की समालोचना का भार सौंपा जाय। एक महाशय, जिनका रहना काशी में हो, इस कमेटी के मन्त्री चुने जांय। इनका कर्तव्य केवल यह हो कि जितनी पुस्तकें सभा में आवें उनकी एक सूची बना कर प्रति सप्ताह, प्रति पक्ष अथवा प्रतिमास, जैसा निश्चय हो, कमेटी के सभासदों के पास भेजदें। उनमें से जो महाशय जिस पुस्तक की समालोचना करना चाहें उसे मगवा लें। समालोचना जो हो उसमें कम से कम दो सभ्य सहमत अवश्य हों। समालोचना हो जाने पर पुस्तकें सभा को लौटा दी जांय, तथा कमेटी के सभासदों के पास जो पुस्तकें समालोचनार्थ आवें, काम हो जाने पर वे भी सभा के पुस्तकालय को अर्पित हों। इस प्रकार से जो समालोचना हो वह किसी पत्र में छाप दी जाय। 'सरस्वती' में प्रति मास इस कार्य के लिये ४ पृष्ठ अलग रक्खे जा सकते हैं। यदि उपयुक्त ग्राहक हो सकें तो एक स्वतन्त्र समालोचक पत्रही निकाला जाय। हमारे विचार में यदि इस प्रकार से कार्य किया जायगा तो उसमें सफलता प्राप्त हो सकेगी। अन्यथा वृथा की लिखा पढ़ी और नामों की भरती से काम न चलेगा।

इस सम्बन्ध में दो बातों का विचार करलेना आवश्यक है। प्रथम तो यह कि डांक व्यय कौन देगा और दूसरे मन्त्री कौन नियत किया जाय। हमारी सम्मति में डांक व्यय का भार सभा को उठाना चाहिए और मन्त्री बाबू कार्तिकप्रसाद नियत किए जांय। आशा है कि इन प्रस्तावों पर विचार कर सहयोगीगण अपनी अपनी सम्मति प्रगट करेंगे। उसके पीछे हम इस प्रस्ताव को सभा में उपस्थित करेंगे। इस बात पर विचार करने की आवश्यकता नहीं रही कि समालोचक समिति स्थापित की जाय अथवा नहीं, क्योंकि अब बिना इसके स्थापित किए काम नहीं चलेगा। अब केवल उचित उपाय का विचार करना ही आवश्यक है।

***

भाषा और पुरातत्व के रसज्ञों को यह बात विदित है कि लाहोरनिवासी पण्डित राधाकृष्ण के प्रस्ताव पर सन् १८६८ में भारत गवर्न्मेण्ट ने यह निश्चय किया कि जहां तक सम्भव हो सके हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थों का पता लगाया जाय और उनकी उपयुक्त सूची बनाकर छाप दी जाय। यह कार्य अब तक चल रहा है और सहस्रों ग्रन्थों का पता लग चुका है। सबसे बड़ा सूचीपत्र केटालोगस केटालोगोरम नाम से योरप में छपा है। संस्कृत भाषा का इससे कितना उपकार हुआ है यह जिन लोगों ने इन सूचियों को देखा है, वे मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं। हमारी हिन्दी भाषा की ओर तो युरोपीय विद्वानों का ध्यान न होने से गवर्न्मेण्ट भी उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखती है, और यह समझ कर कि इसके भण्डार में तो कुछ है ही नहीं, आज तक कभी इसकी खोज का किसी को ध्यान भी न आया। हमलोग काशी नागरीप्रचारिणी सभा के अत्यन्त अनुगृहीत हैं कि उसने इस बात का उद्योग किया और इसपर गवर्न्मेण्ट का ध्यान दिलाया। पहिले बङ्गाल की एशियाटिक सुसाइटी ने हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों के अनुसन्धान की प्रतिज्ञा की और लगभग ६०० पुस्तकों

का पता भी लगाया, पर फिर न जाने किस कारण से यह काम बन्द कर दिया गया। सभा के पुनः उद्योग करने पर पश्चिमोत्तर प्रदेश की गवर्न्मेण्ट ने उसे ४००। रु० वार्षिक देना स्वीकार किया, कि जिसमें सभा इस काम को स्वयं कर सके। साथ ही गवर्न्मेण्ट ने यह भी प्रतिज्ञा की कि जो रिपोर्ट प्रतिवर्ष सभा देगी उसे वह अपने व्यय से छाप कर प्रकाशित करेगी। प्रथम वर्ष की रिपोर्ट अभी जा चुकी है और वह अभी गवर्न्मेण्ट के विचाराधीन है, अतएव उसके विषय में आज हम कुछ विशेष नहीं कहा चाहते। सब मिलाकर २५७ हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का पता सभा ने इस वर्ष लगाया है। आगे चलकर हम इस रिपोर्ट के सम्बन्ध में विस्तार रूप से लिखेंगे। पर आज हमारा कहना इतना ही है कि सभा के इस उद्योग से हिन्दी भाषा को बड़ा लाभ होगा। कितने ही अमूल्य रत्नों का जो अब तक न जाने कहां छिपे पड़े थे, पता लग जायगा और सबसे बढ़ कर बात तो यह होगी कि युरोपीय विद्वानों का ध्यान हिन्दी की ओर आकृष्ट हो जायगा। हिन्दीभाषा के इतिहास जाननेवालों से यह बात छिपी नहीं है कि हिन्दी पद्य के असंख्य ग्रन्थ अब भी राजपुताना, बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड आदि प्रान्तों में अप्रकाशित विद्यमान हैं। क्या हिन्दीभाषा के रसिकों का यह कर्तव्य न होना चाहिए कि इन ग्रन्थों का पता सभा को लग जाय और उनके प्रकाश होने का उद्योग हो।

***

इन प्राचीन पुस्तकों की बात लिखते लिखते हमें दो एक राजस्थानों की बात स्मरण हो आई। जयपुर के पूर्व महाराज रामसिंह जी बड़े विद्यारसिक और गुणग्राही थे। इन्होंने अपने समय में असंख्य भाषा और संस्कृत ग्रन्थों का संग्रह किया। ऐसा सुनने में आता है कि इनमें जो बहुमूल्य और अप्राप्त थे, तथा च जो महाराज को अत्यन्त प्रिय थे वे सब उनकी मृत्यु के कुछ पूर्व महलों में पत्थर की अलमारियां बनवाकर दिवालों में चुनवा दिए गए। हम इस गप्प को सत्य नहीं मान सकते, पर यदि यह वास्तव में सत्य है तो इससे बढ़ कर दूसरा कोई पाप नहीं हो सकता। अस्तु, जो कुछ हो, पर आज दिन जयपुर में दो पुस्तकालय वर्तमान हैं। एक तो पबलिक लाइब्रेरी, जिसमें अंग्रेज़ी पुस्तकों का विशेष संग्रह है। इस पुस्तकालय में प्रत्येक पुरुष जा सकता है। दूसरा पुस्तकालय राजप्रासाद में है, जिसमें प्रायः हस्तलिखित पुस्तकें रक्खी हैं। इस पुस्तकालय के भी दो भाग हैं। एक में साधारण पुस्तकें रक्खी हैं, जिनके दर्शन कुछ विशेष उद्योग करने पर हो सकते हैं। दूसरे भाग में अमूल्य रत्न बस्तों में बँधे पड़े हैं। उन सबपर महाराज की मोहर है। इस अवस्था में न वे कभी खुलते हैं और न यही पता लगता है कि वे सड गल गए या ज्यों कि त्यों बने हुए हैं। इस भाग की पुस्तकों का देखना असम्भव है। स्वयं महाराजा साहब ने भी कदाचित् ही कभी किसी बस्ते को देखा हो। पुस्तकों के रक्षापूर्वक रखने का कोई पढ़ा लिखा कभी भी विरोधी न होगा, पर उनके दर्शन दुर्लभ करके विद्या की उन्नति में बाधा डालना किस नीति के अनुकूल है यह समझ में नहीं आता। सुनने में आता है कि महाराज के यहां एक सचित्र महाभारत है जिसके बनवाने में बहुत कुछ व्यय किया गया था। अंग्रेज़ों को इसकी सुध लगने पर वे उसे देखने आए। कई अधिकारियों ने उसे ले जाना भी चाहा, पर किसी न किसी प्रकार से वह ग्रन्थ अब तक बचा पड़ा है। लोग ऐसा कहते हैं कि जब से यह घटना हुई है तभी से पुस्तकों को छिपा रखने की नीति का अवलंबन किया गया है। महाराज साहब से हमारी सविनय प्रार्थना है कि जिस प्रकार से अकाल के सम्बन्ध में उन्होंने सुनीति का आश्रय लिया है, उसी प्रकार इन अमूल्य पुस्तक रत्नों की सूची बनवा कर प्रकाशित कर दें, जैसा कि बीकानेर में किया गया है। महाराज साहब को यह विदित होगा कि बीकानेर से एक

पुस्तक भी नहीं गई। अतएव सूची के छप जाने पर पुस्तकों के जाने का भय न रहेगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि जयपुर दर्बार हमारी प्रार्थना पर विचार कर विद्योन्नति की ओर से जो वह उदासीनता दिखा रहा है, इस कलङ्क को दूर करेगा। महाराज मानसिंह से वीर, धीर, पराक्रमी, विद्वान, गुणग्राही और विद्यारसिक की गद्दी पर विराज कर हमको दृढ़ विश्वास है कि महाराज सवाई माधोसिंह जी भी अपने प्रसिद्ध पूर्वज के गुणों का परिचय दे अमोघ यश के भागी होंगे। हम भारतवर्ष के अन्य प्रसिद्ध पुस्तकालयों के विषय में समय समय पर लिखते रहेंगे।

***

श्रीमती महाराणी विक्टोरिया के स्मरणार्थ जो वृहत भवन कलकत्ते में बनेगा उसका वृत्तान्त हिन्दीपठित समाज को विदित है। श्रीमान लार्ड कुर्ज़न महोदय का प्रस्ताव है कि इसमें अन्य प्राचीन वस्तुओं के व्यतिरिक्त भारतवर्ष के बड़े बड़े लोगों की मूर्तियां और चित्र भी रहेंगे। अब इस प्रस्ताव के पक्ष अथवा विपक्ष में कुछ कहना वृथा है, क्योंकि अब तो यह पूर्णतया निश्चय ही हो चुका कि महाराणी के स्मरण में कोई प्रजाहितकारी कार्य न करके यह प्रस्तरगृह ही बनाया जाय। श्रीमान लार्ड कुर्ज़न ने जो वक्तृता कलकत्ते में इस विक्टोरिया हाल के सम्बन्ध में दी थी, और जिसमें इस बात का पूरा पूरा वर्णन किया था कि इस विक्टोरिया भवन में क्या क्या रहेगा, उसमें श्रीमान ने भारतवर्ष के अनेक बड़े लोगों के नाम लिए थे जिनके चित्रों के वहां लगाने की उन्होंने अनुमति प्रगट की थी; पर उन सबमें से एक नाम भी भारतवर्ष की भिन्न भिन्न भाषाओं के ग्रन्थकारों का न था। वीर, पराक्रमी, बुद्धिमान लोगों के अतिरिक्त उन लोगों की कीर्ति के चिन्ह भी उस भवन में बिराजने चाहिएं जिन्होंने अपनी लेखनी से अपने देश का असीम उपकार किया है। इस बात को इस देशवासी क्या युरोपवासी विद्वानों ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है कि गुसाईं तुलसीदास जी के रामचरितमानस ने देश का वह असीम उपकार किया है कि जो दूसरे किसी उपाय से होना असम्भव है, डाक्टर ग्रियर्सन का कथन है कि यदि कृस्तानों के लिये बाइबिल माननीय पुस्तक है तो भारतवर्ष के लिये तुलसीदास जी की रामायण भी उसी प्रकार माननीय है। बालक, वृद्ध, युवा, बड़े, छोटे, अमीर, गरीब, सबके यहां इसके दर्शन होते हैं। इसी प्रकार भारतवर्ष की देशभाषाओं में अनेक लेखक होगए हैं जिनके चित्रों का समावेश विक्टोरिया हाल में होना अत्यन्त आवश्यक और उचित है। हिन्दी के लेखकों में से तुलसीदास, सूरदास, बिहारीलाल, केशवदास, लल्लूलाल, हरिश्चन्द्र, शिवप्रसाद, लक्ष्मणसिंह प्रतापनारायण मिश्र आदि लेखकों में से जिनके चित्र मिलसकें, वे सब विक्टोरिया हाल में लगाए जाने चाहिएं। जिन महानुभावों के नाम ऊपर दिए गए हैं उनमें अधिकांश के चित्र प्राप्त हैं। हमको विश्वास है कि हमारे सहयोगीगण इस प्रस्ताव पर विचार कर इस विषय का आन्दोलन अपने पत्रों में मचावेंगे।

***

हिन्दी भाषा में गोसांई तुलसीदास की रामायण से बढ़कर दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ नहीं है। जितनी बिक्री और प्रतिष्ठा इस अमूल्य रत्न की इस देश में हुई है उतनी संस्कृत रामायण को भी नहीं हुई। परन्तु खेद का विषय है कि ऐसे प्रसिद्ध ग्रन्थ की यह दुर्दशा हो जाय कि किसी संस्करण में शुद्ध पाठ न मिले। बांकीपुर के खड्गविलास प्रेस से जो रामायण कई वर्ष हुए छापी गई थी और जिसकी बड़ी धूम मचाई गई थी, उसे देखने और प्राचीन प्रतियों से मिलाने पर उसपर से भी श्रद्धा जाती रही। अतएव ऐसे ग्रन्थ को शुद्धता पूर्वक छापने का जो बीड़ा उठावे उसका हिन्दी पठित समाज को बड़ा अनुगृहीत होना चाहिए। यह उद्योग काशी की नागरीप्रचारिणी सभा का है और इस संस्करण के प्रकाशक इण्डियन प्रेस के

स्वामी हैं। पाठ का संशोधन अनेक प्राचीन प्रतियों से हो रहा है। इन सब में सबसे प्राचीन प्रति संवत् १६६१ की लिखी हुई है, परन्तु यह केवल बालकाण्ड मात्र है, दूसरी प्रति राजापुर की अयोध्याकाण्ड है, जिसके विषय में ऐसा कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने उसे स्वयं अपने हाथों से लिखा था। तीसरी प्रति १७०४ संवत् की लिखी हुई है और चौथी १७२१ की है। इन हस्तलिखित प्रतियों के अतिरिक्त बन्दन पाठक जो की छपवाई हुई तथा उनकी संशोधित, और महाराज काशीराज की छपवाई हुई पुस्तकों से भी सहायता ली जाती है। इन सब प्रतियों से पाठ मिलाने पर गोसाईं जी के ग्रन्थ की विचित्र अवस्था देखने में आती है। जहां जहां यह पुस्तक छपी है कुछ न कुछ पाठपरिवर्तन सम्पादक ने अपने मन से कर दिया है। ऐसे अमूल्य और प्रसिद्ध ग्रन्थ का एक शुद्ध संस्करण हो जाना अत्यन्त आवश्यक था। हम काशी नागरीप्रचारिणी सभा के उद्योग को हृदय से सराहते हैं कि उसने इस काम को अपने हाथ में लिया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि वह इसे योग्यता से सम्पादित करेगी। हिन्दी के पाठकों को यह जान कर विशेष आनन्द होगा की यह संस्करण सचित्र होगा। ऊपर हम हिन्दी हस्त-लिखित पुस्तकों की खोज के विषय में लिख आए हैं। हमारे पाठक इस बात को देखेंगे कि यदि यह खोज न होती तो रामायण की इतनी प्राचीन प्रतियों के मिलने में कितनी कठिनता होती। परन्तु पता लगजाने से अब इनका मिल जाना कोई कठिन नहीं है। सभा से हमारी प्रार्थना है कि वह पृथ्वीराज रासो, सूरसागर और भक्तनामावली के छापने का भी उद्योग करे। हम इन ग्रन्थों के विषय में विशेष रूप फिर कभी लिखेंगे।

विधि-विड़म्बना

१

चारु चरित तेरे चतुरानन! भक्तियुक्त सब गाते हैं;
इस सुविशाल विश्व की रचना तुझसे ही बतलाते हैं।
कहते हैं तुझमें चतुराई है इतनी सविशेष
जिसको देख चकित होते हैं शेष, महेश, रमेश॥

२

चतुर्वेद की शपथ तुझे है मुझे बात यह बतलाना
तूने भी, कह, क्या अपनेको महा चतुर मन में माना?
माना सत्य; क्योंकि तूने कुछ कहा नहीं प्रतिकूल;
कमलासन! सचमुच यह तेरी हैगी भारी भूल॥

३

भली बुरी बातें सुत की सब पिता सदा सुन लेता है;
अनुचित सुन लेवै तो भी वह उसे क्षमा कर देता है।
तेरा तो त्रिभुवन में विश्रुत परम पितामह नाम;
फिर तुझसे कहने सुनने में भय का है क्या काम?

४

दोषराशि से दूषित तेरी करतूतें हम पाते हैं;
अतः यहां पर कोई कोई उनमें से दरसाते हैं।
अतिनीरस, अतिकर्कश, अति कटु वेद-वाक्य-विस्तार
क्षण भर तू समेट कर सुन निज अविचारों का सार॥

५

विक्रम भोजादिक महीप वर, महीमयङ्क महाज्ञानी,
सरस्वती के सच्चे सेवक, देवद्रुम समान दानी।
तूने इनसे भूतल भूषित किया अल्प ही काल;
भूल और क्या हो सकती है इससे अधिक विशाल?

६

काव्य-कला-कौशल-सम्बन्धीरुचिर-सृष्टिकेनिर्माता;
मधु-मिश्री से भी अति मीठी वचन-मालिकाकेदाता।
कालिदास-भवभूति आदि को अन्य लोक पहुँचाय,
कविता-वधू विधे! तूने हां विधवा करदी हाय!!

७

कपिलकणादपतञ्जलिगौतमव्यासआदिवर विज्ञानी,
जिनकी कीर्ति-ध्वजा अभीतकसततफिरैहैफहरानी।
उनको भी तूने क्षणभंगुर किया, विवेक विहाय,
दिखलावैं हम तेरी किन किन भूलों का समुदाय?

८

रम्यरूप, रसराशि, विमलवपु, लीला-ललित मनोहारी,
सब रत्नों में श्रेष्ठ शशिप्रभ अति कमनीय नवल नारी,
रच, फिर उसको जराजीर्ण तू करता है निःशेष!
भला और तुझ जरठ जीव से क्या होगा सुविशेष?